एलेफ तेल

भारत के बारे में बेहतरीन लेखन

भारतीय राजाओं

की

पुस्तक

कहानियाँ और निबंध

सलमान रुश्दी, रोमिला थापर, अब्राहम इराल,
कल्कि, मनु स. पिल्लई, जादूनाथ सरकार,
राजमोहन गांधी, विलियम डेलरिंपल,
खुशवंत सिंह, वीर संघवी, नमिता भंडारे

Table of Contents

शीर्षक पेज
कॉपीराइट पृष्ठ
पुस्तक पर एक टिप्पणी
अंतर्वस्तु
1. साम्राज्य का उदय: मौर्यकालीन भारत
2. प्रथम हिंदू साम्राज्य
3. राजा चोज़ार
4. Krishnadeva Raya
5. दुनिया का आश्रय
6. शिवाजी और उनका समय
7. टीपू सुल्तान
8. द लास्ट मुगल
9. रणजीत सिंह, पंजाब के महाराजा
10. माधवराव सिंधिया
स्वीकृतियाँ
योगदानकर्ताओं पर टिप्पणियाँ

एलेफ तेल

भारत के बारे में बेहतरीन लेखन

भारतीय राजाओं की पुस्तक

कहानियाँ और निबंध

सलमान रुश्दी, रोमिला थापर, अब्राहम इराल,
कल्कि, मनु स. पिल्लई, जादूनाथ सरकार,
राजमोहन गांधी, विलियम डेलरिंपल,
खुशवंत सिंह, वीर संघवी, नमिता भंडारे

एलेफ़ तेल

भारतीय राजाओं की पुस्तक

‘ओलियो’ शब्द का एक अर्थ ‘विविध रचनाएँ’ भी है। अलेफ ओलियो श्रृंखला की पुस्तकों में भारत के विभिन्न विषयों पर सर्वश्रेष्ठ रचनाओं का संकलन है—महान शहर, संस्कृति और सभ्यता के पहलू, और अन्य विशिष्ट भारतीय घटनाएँ। अद्वितीय जटिलता, सुंदरता, त्रासदी और रहस्य से परिपूर्ण देश की गहरी समझ और मार्मिक चित्रण से भरपूर, अलेफ ओलियो की प्रत्येक पुस्तक भारत को ऐसे दृष्टिकोण से प्रस्तुत करती है जैसा पहले शायद ही कभी देखा गया हो।

एलेफ़ ओलियो में भी

दिल्ली का सार

एक हिंसक देश में

प्यार और वासना

भीतरी इलाकों से टिप्पणियाँ

THE BOOK OF INDIAN KINGS

Stories and Essays

एलेफ बुक कंपनी
एक स्वतंत्र प्रकाशन फर्म
रूपा पब्लिकेशन्स इंडिया द्वारा प्रायोजित
भारत में पहली बार 2020 में प्रकाशित हुआ।
एलेफ बुक कंपनी द्वारा
7/16 Ansari Road, Daryaganj
नई दिल्ली 110 002
संकलन का कॉपीराइट © एलेफ बुक कंपनी 2020 के पास सुरक्षित है।
पृष्ठ 114 (धन्यवाद) कॉपीराइट पृष्ठ का विस्तार है।
व्यक्तिगत रचनाओं और अनुवादों का कॉपीराइट संबंधित लेखकों और अनुवादकों के पास सुरक्षित है।
सर्वाधिकार सुरक्षित।
कॉपीराइट धारकों का पता लगाने और अनुमति प्राप्त करने के लिए हर संभव प्रयास किया गया है, लेकिन सभी मामलों में यह संभव नहीं हो पाया है; हमारी जानकारी में आई किसी भी चूक को भविष्य के संस्करणों में दूर कर दिया जाएगा।
इस संकलन में शामिल काल्पनिक रचनाओं में, नाम, पात्र, स्थान और घटनाएं या तो लेखकों की कल्पना की उपज हैं या काल्पनिक रूप से उपयोग की गई हैं और किसी भी वास्तविक व्यक्ति, जीवित या मृत, घटना या स्थान से कोई भी समानता पूरी तरह से संयोगवश है।
इस पुस्तक में व्यक्त किए गए विचार और मत लेखकों के अपने हैं और तथ्य उन्हीं के द्वारा बताए गए हैं, जिनकी यथासंभव पुष्टि की गई है, और प्रकाशक इसके लिए किसी भी प्रकार से उत्तरदायी नहीं हैं।
एलेफ बुक कंपनी से लिखित अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भी भाग को किसी भी रूप में या किसी भी माध्यम से पुन: प्रस्तुत, प्रसारित या किसी पुनर्प्राप्ति प्रणाली में संग्रहीत नहीं किया जा सकता है।
ISBN: 978-81-943657-0-9
1 3 5 7 9 10 8 6 4 2
यह पुस्तक इस शर्त के अधीन बेची जाती है कि इसे व्यापारिक रूप से या किसी अन्य तरीके से, प्रकाशक की पूर्व सहमति के बिना, इसके प्रकाशन के समय प्रयुक्त कवर या बाइंडिंग के अलावा किसी अन्य रूप में उधार नहीं दिया जाएगा, पुनर्विक्रय नहीं किया जाएगा, किराए पर नहीं दिया जाएगा या प्रसारित नहीं किया जाएगा।

सहायता, कृपा, संयम, समर्पण
एक शक्तिशाली राजा की परिभाषा
— तिरुवल्लुवर, तिरुक्कुरल,
युगल 390

पुस्तक पर एक टिप्पणी

मूल प्रकाशन के स्वरूप और भाव को बनाए रखने के लिए, पाठों को अलेफ़ की प्रकाशन शैली के अनुसार मानकीकृत नहीं किया गया है। कुछ रचनाओं में, टिप्पणियाँ, संदर्भ और क्रॉस-रेफरेंस हटा दिए गए हैं। उपसंहार गोपालकृष्ण गांधी द्वारा लिखित तिरुक्कुरल: ए न्यू इंग्लिश वर्जन से लिया गया है।

अंतर्वस्तु

1. ROMILA THAPAR
   साम्राज्य का उदय: मौर्यकालीन भारत
2. अब्राहम एराली
   प्रथम हिंदू साम्राज्य
3. कल्कि
   राजा चोज़ार
   सी.वी. कार्तिक नारायणन द्वारा तमिल से अनुवादित
4. मनु एस. पिल्लई
   Krishnadeva Raya
5. सलमान रुश्दी
   दुनिया का आश्रय
6. JADUNATH SARKAR
   शिवाजी और उनका समय
7. RAJMOHAN GANDHI
   टीपू सुल्तान
8. विलियम डेलरिम्पल
   अंतिम मुगल
9. खुशवंत सिंह
   पंजाब के महाराजा रणजीत सिंह
10. VIR SANGHVI AND NAMITA BHANDARE
    माधवराव सिंधिया
    स्वीकृतियाँ

एक

~

मौर्यकालीन भारत में साम्राज्य का उदय *

ROMILA THAPAR

लगभग 272 ईसा पूर्व में बिंदुसार की मृत्यु के समय, उपमहाद्वीप का एक बड़ा हिस्सा मौर्य साम्राज्य के अधीन आ चुका था। पूर्वी तट पर स्थित कलिंग (उड़ीसा) एक ऐसा क्षेत्र था जो मौर्य साम्राज्य के लिए शत्रुतापूर्ण था और संभवतः प्रायद्वीप और दक्षिण भारत के साथ मौर्य व्यापार में बाधा उत्पन्न कर रहा था। इस क्षेत्र को जीतने का दायित्व बिंदुसार के पुत्र अशोक को सौंपा गया था, जिनका कलिंग अभियान मात्र सैन्य महत्व की घटना नहीं थी।

लगभग सौ वर्ष पूर्व तक भारत में अशोक मौर्य वंश की पुराणों में उल्लिखित अनेक राजाओं में से एक थे। बौद्ध परंपरा में उन्हें चक्रवर्ती/चक्कवत्ती, एक सर्वशक्तिशाली सम्राट कहा जाता था, लेकिन बौद्ध धर्म के पतन के बाद भारत में यह परंपरा लुप्त हो गई थी। हालांकि, 1837 में जेम्स प्रिंसेप ने हड़प्पा सभ्यता के बाद सबसे प्राचीन भारतीय लिपि, ब्राह्मी में लिखे एक शिलालेख को पढ़ा। कई शिलालेखों में राजा ने स्वयं को देवनम्पिया पियादस्सी (देवताओं के प्रिय पियादस्सी) कहा था। यह नाम वंश सूचियों में उल्लिखित किसी भी नाम से मेल नहीं खाता था, हालांकि श्रीलंका के बौद्ध इतिहास में इसका उल्लेख मिलता है। धीरे-धीरे सुरागों को जोड़ा गया, लेकिन अंतिम पुष्टि 1915 में हुई, जब शिलालेखों का एक और संस्करण मिला जिसमें राजा ने स्वयं को देवनम्पिया अशोक कहा था।

अशोक के शिलालेख, जो उनके साम्राज्य के विभिन्न भागों में शिलालेखों के रूप में पाए जाते हैं, हमें न केवल राजा के व्यक्तित्व से परिचित कराते हैं, बल्कि उनके शासनकाल की घटनाओं और विशेष रूप से एक शासक के रूप में उनकी नीतियों से भी अवगत कराते हैं। उनकी व्यक्तिगत चिंताओं के कथन के रूप में ये उल्लेखनीय दस्तावेज हैं, जो उनके समय के परिवेश को जीवंत रूप से दर्शाते हैं। इससे हमें आधिकारिक दस्तावेजों की पारंपरिक सीमाओं से परे कुछ झलक मिलती है। ये शिलालेख वास्तव में एक इंसान और एक राजनेता के रूप में उनकी चिंताओं

को 'बोलते' हैं। इनकी लगभग संवादात्मक शैली राजा के व्यक्तित्व को जीवंत कर देती है।

उनके शासनकाल के पूर्वार्ध के फरमान सुविधाजनक स्थानों पर स्थित चट्टानों पर उत्कीर्ण किए गए थे, इसलिए इन्हें लघु और दीर्घ शिलालेख कहा जाता है। ये फरमान पूरे साम्राज्य में, विशेषकर स्थायी बस्तियों और घनी आबादी वाले क्षेत्रों में व्यापक रूप से वितरित थे। उनके शासनकाल के उत्तरार्ध में, उनके फरमान सुव्यवस्थित बलुआ पत्थर के अखंड स्तंभों पर उत्कीर्ण किए गए थे, जिनमें से प्रत्येक के शीर्ष पर जानवरों की सुंदर नक्काशी की गई थी, और इन्हें स्तंभ फरमान के रूप में जाना जाता है। यह पत्थर वाराणसी के पास चुनार के स्थलों से निकाला गया था और इसकी कटाई और नक्काशी में काफी तकनीकी विशेषज्ञता की आवश्यकता रही होगी। स्तंभ फरमान गंगा के मैदान तक ही सीमित हैं, संभवतः इसलिए क्योंकि इन्हें नदी के मार्ग से ले जाया गया था। यह क्षेत्र साम्राज्य के केंद्र से मेल खाता है।

अशोक के शिलालेख लगातार मिलते रहते हैं और नए शिलालेखों से मिलने वाली जानकारियों को लेकर हमेशा उत्सुकता बनी रहती है। भले ही शिलालेखों का पाठ पहले के शिलालेखों जैसा ही हो, स्थान का महत्व मौर्यकालीन इतिहास के बारे में हमारी जानकारी को बढ़ाता है। उत्तर-पश्चिमी सीमाओं पर रहने वाले ग्रीक और अरामी भाषा बोलने वाले लोगों के लिए लिखे गए अशोक के शिलालेखों के ग्रीक या अरामी भाषा में अनुवाद या संस्करण, उन प्राकृत शब्दों के अर्थ को स्पष्ट करने में सहायक रहे हैं जो अस्पष्ट या विवादास्पद हैं। इस प्रकार, कुछ विद्वानों ने धम्म का अर्थ बुद्ध की शिक्षा बताया है, जबकि अन्य ने इसे नैतिक व्यवहार के प्रति एक व्यापक चिंता के रूप में समझा है। ग्रीक में इसका अनुवाद 'यूसेबिया' दूसरे अर्थ का समर्थन करता है। रोचक बात यह है कि ग्रीक और अरामी संस्करणों में बुद्ध की शिक्षाओं का कोई उल्लेख नहीं है। यदि उनका उद्देश्य बौद्ध धर्म का प्रचार करना था, तो यह अपेक्षित था। एक और दिलचस्प बात यह है कि इन शिलालेखों में कुछ अवधारणाएँ उस भाषा के दार्शनिक प्रवचन से ली गई हैं। इस प्रकार, अरामी भाषा में लिखे शिलालेखों को कुछ पारसी अवधारणाओं के संदर्भ में पढ़ने से बेहतर समझा जा सकता है। अधिक व्यावहारिक स्तर पर, लघु शिला शिलालेख के ग्रीक संस्करण में तिथि को समाप्त हो चुके शासनकाल के वर्षों के रूप में स्पष्ट किया गया है, जो कालानुक्रमिक पुनर्निर्माण में सहायक है।

अशोक का प्रशासक के रूप में अनुभव तक्षशिला और उज्जैन के राज्यपाल के रूप में शुरू हुआ, ये दोनों शहर व्यापारिक गतिविधियों के केंद्र थे। तक्षशिला में उनके प्रवास का वर्णन उत्तर बौद्ध परंपरा से संबंधित ग्रंथों में मिलता है। इनमें उनके पिता की मृत्युशय्या पर सिंहासन के लिए उनके प्रयास का उल्लेख है, जिसे कुछ शक्तिशाली मंत्रियों ने प्रोत्साहित किया था। उज्जैन में उनके प्रवास का वर्णन दक्षिणी बौद्ध परंपरा के श्रीलंकाई इतिहासों में मिलता है। इनमें एक व्यापारी की सुंदर पुत्री के प्रति उनके प्रेम का उल्लेख है, जो एक धर्मनिष्ठ बौद्ध थीं और उनके पुत्र महिंदा की माता थीं, जिनके बारे में कहा जाता है कि उन्होंने श्रीलंका में बौद्ध धर्म का प्रसार किया था।

इस बात पर विवाद जारी है कि क्या अशोक ने अपने पिता की मृत्यु के तुरंत बाद उनका स्थान ग्रहण किया या उनके बीच चार साल का ऐसा अंतराल रहा जिसमें दोनों भाइयों के बीच सिंहासन के लिए संघर्ष हुआ। अशोक के शासनकाल की घटनाओं में से, आधुनिक इतिहासकारों द्वारा सबसे अधिक उल्लेखित घटना उनका बौद्ध धर्म में परिवर्तन है। इसका संबंध कलिंग के प्रसिद्ध अभियान से है। लगभग 260 ईसा पूर्व में अशोक ने कलिंगियों के विरुद्ध अभियान चलाया और उन्हें परास्त किया। संभवतः यह अभियान कलिंग से संसाधन प्राप्त करने के लिए; पूर्वी तट से होकर गुजरने वाले प्रायद्वीप के साथ मौर्यों के लाभदायक व्यापार मार्गों की रक्षा करने के लिए; या कलिंगियों को मगध के नियंत्रण से अलग होने के लिए दंडित करने के लिए था, यदि नंदों द्वारा निर्मित नहर नियंत्रण का प्रतीक थी। युद्ध में हुई तबाही ने राजा को पश्चाताप से भर दिया। बौद्ध शिक्षा में उनकी पूर्व सतही रुचि फिर से जागृत हुई और इस बार यह उनका मुख्य लक्ष्य बन गया। अतीत में यह कहा गया है कि युद्ध की भयावहता के तुरंत बाद उनका बौद्ध धर्म में नाटकीय रूप से परिवर्तन हुआ। लेकिन उनका परिवर्तन रातोंरात नहीं हुआ था; अपने एक शिलालेख में उन्होंने उल्लेख किया है कि ढाई वर्ष की अवधि के बाद ही वे बौद्ध धर्म के कट्टर अनुयायी बने। अंततः इसी कारण उन्होंने अहिंसा का समर्थन किया और विजय प्राप्त करने के साधन के रूप में युद्ध का त्याग कर दिया। फिर भी, आश्चर्य की बात यह है कि उन्होंने कलिंग में कहीं भी अपने पश्चाताप का वृत्तांत उत्कीर्ण नहीं कराया। इसके स्थान पर उन्होंने पृथक शिलालेख (जैसा कि उन्हें कहा जाता है) उत्कीर्ण कराए, जो उनके अधिकारियों के लिए निर्देश थे और सुशासन की आवश्यकता पर बल देते थे।

फिर भी, एक विजेता की ओर से अभियान पर दिया गया उनका बयान वास्तव में असाधारण है, जो उन्हें एक दुर्लभ इंसान के रूप में स्थापित करता है। वे कहते हैं:

> आठ वर्ष के राज्याभिषेक के बाद, देवताओं के प्रिय राजा पियादस्सी ने कलिंग पर विजय प्राप्त की। डेढ़ लाख लोगों को निर्वासित किया गया, एक लाख मारे गए और उससे कई गुना अधिक लोग मृत्यु को प्राप्त हुए। इसके बाद, कलिंग के विलय के बाद, देवताओं के प्रिय राजा ने अत्यंत लगन से धम्म का अभ्यास किया, धम्म की इच्छा रखी और धम्म का उपदेश दिया। कलिंग पर विजय प्राप्त करने पर देवताओं के प्रिय राजा को पश्चाताप हुआ, क्योंकि किसी स्वतंत्र देश पर विजय प्राप्त करने पर लोगों का नरसंहार, मृत्यु और निर्वासन देवताओं के प्रिय राजा के लिए अत्यंत कष्टदायी होता है और उनके मन पर गहरा बोझ डालता है। देवताओं के प्रियतम को इससे भी अधिक दुःख इस बात का है कि वहाँ निवास करने वाले, चाहे वे ब्राह्मण हों, श्रमण हों, या अन्य संप्रदायों के हों, या गृहस्थ हों जो अपने वरिष्ठों, माता-पिता और गुरुओं के प्रति आज्ञाकारी हों और अपने मित्रों, परिचितों, सहकर्मियों, रिश्तेदारों, दासों और सेवकों के प्रति सत्कारपूर्ण और भक्तिपूर्ण व्यवहार करते हों—सभी हिंसा, हत्या और प्रियजनों से वियोग का सामना करते हैं। यहाँ तक कि जो सौभाग्य से बच गए हैं और जिनका प्रेम अबाधित है, वे भी अपने मित्रों, परिचितों, सहकर्मियों और रिश्तेदारों के विपत्तियों से पीड़ित होते हैं। सभी मनुष्यों के इस दुख में भागीदार होने से देवताओं के प्रियतम का मन भारी होता है।
>
> (मेजर रॉक एडिक्ट XIII, अनुवादक: आर. थापर)

भारत के सबसे प्रतिष्ठित शासकों में से एक सम्राट अशोक मौर्य वंश से संबंधित थे। यद्यपि उनकी जन्मतिथि निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है, लेकिन यह ज्ञात है कि उन्होंने अपने पिता बिंदुसार के बाद सिंहासन संभाला और 232 ईसा पूर्व में अपनी मृत्यु तक शासन किया। यह अंश 'द पेंगुइन हिस्ट्री ऑफ अर्ली इंडिया' से लिया गया है।

दो

~

प्रथम हिंदू साम्राज्य *

अब्राहम एराली

तीसरी शताब्दी ईस्वी में कुषाण साम्राज्य के पतन के बाद उत्तर भारत में एक शताब्दी तक राजनीतिक उथल-पुथल का दौर चला, जिसके बाद चौथी शताब्दी में बिहार में गुप्त साम्राज्य के उदय के साथ परिदृश्य में नाटकीय परिवर्तन आया। इस राजवंश की पृष्ठभूमि के बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं है। हालांकि मौर्योत्तर काल के अभिलेखों में गुप्त उपनाम वाले कुछ अधिकारियों और अन्य लोगों के संदर्भ मिलते हैं, लेकिन यह अनिश्चित है कि इन गुप्तों का गुप्त राजवंश से कोई संबंध था या नहीं। हिंदू शास्त्र ग्रंथों में वैश्यों को 'गुप्त' प्रत्यय से समाप्त होने वाले नाम दिए गए हैं, लेकिन अन्य वर्णों में भी इस प्रत्यय का प्रयोग होता रहा है। पुराणों में प्रारंभिक गुप्तों का तिरस्कारपूर्ण वर्णन किया गया है, उन्हें तुच्छ राजा बताया गया है जो 'बर्बर, अधर्मी, बेईमान, कंजूस और अत्यंत क्रोधी' थे। कोसंबी टिप्पणी करते हैं: 'इस वंश की उत्पत्ति किसी भी प्रकार से सम्मानजनक नहीं थी, चाहे वह कुल हो, जनजाति हो या जाति।'

गुप्त वंश का इतिहास श्री-गुप्त से शुरू होता है, जिन्हें गुप्त शिलालेखों में आदिराज, प्रथम राजा के रूप में वर्णित किया गया है। हालांकि, यह संदेहजनक है कि वे और उनके उत्तराधिकारी, श्री घटोत्कच-गुप्त, केवल सामंती सरदारों से अधिक कुछ थे या नहीं, क्योंकि महाराजा (महान राजा) की उपाधि शास्त्रीय युग में सरदारों द्वारा ही धारण की जाती थी, जबकि राजा महाराजाधिराज (राजाओं के महान राजा) की उपाधि धारण करते थे। श्री-गुप्त के परपोते समुद्र-गुप्त के शासनकाल के इलाहाबाद स्तंभ शिलालेख में इन उपाधियों के बीच स्पष्ट अंतर बताया गया है: 'समुद्र-गुप्त महाराजाधिराज, समृद्ध चंद्र-गुप्त के पुत्र, महाराजाधिराज... समृद्ध घटोत्कच के पुत्र, महाराजा, और समृद्ध [श्री] गुप्त के पुत्र के पुत्र, महाराजा।'

पहले दो गुप्त वंशों के बारे में उनके नामों के अलावा और कुछ भी ज्ञात नहीं है। चंद्रगुप्त प्रथम, जो इस वंश के तीसरे शासक थे, ने गुप्त वंश को प्रांतीय गुमनामी से निकालकर उपमहाद्वीप में प्रसिद्धि दिलाई और उन्हीं के शासनकाल से 320 ईस्वी से शुरू होने वाले गुप्त युग का काल माना जाता है। गुप्त वंश के भाग्य में परिवर्तन का निर्णायक मोड़ चंद्रगुप्त का कुमारदेवी से विवाह था, जो उत्तरी बिहार के गंगा-पार के मैदानों में रहने वाली प्राचीन और संभवतः अभी भी शक्तिशाली लिच्छवी जनजाति की राजकुमारी थीं, जो दक्षिणी बिहार में गुप्त क्षेत्रों से सटी हुई थी। इस विवाह से गुप्तों को ठीक-ठीक क्या लाभ हुआ, यह स्पष्ट नहीं है। संभवतः राजकुमारी एक उत्तराधिकारी थीं और विवाह ने दोनों राज्यों को एकजुट कर दिया, जिससे गुप्तों को विस्तार के लिए

आवश्यक क्षेत्र और शक्ति प्राप्त हो गई; या यह भी हो सकता है कि प्रसिद्ध योद्धा जनजाति लिच्छवियों ने गुप्तों को महत्वपूर्ण सैन्य सहायता प्रदान की हो; कम से कम, इस विवाह ने नवगठित गुप्त वंश की प्रतिष्ठा में काफी वृद्धि की होगी।
चंद्रगुप्त के शासनकाल में लिच्छवी गठबंधन इतनी महत्वपूर्ण घटना थी कि उन्होंने अपने और कुमारदेवी के संयुक्त नाम से सोने के सिक्के जारी किए, मानो वे सह-शासक हों। उनके सिक्कों के एक तरफ उनकी और उनकी रानी की छवि है, जबकि दूसरी तरफ शेर पर सवार देवी की छवि और 'लिच्छवी' लिखा हुआ है। चंद्रगुप्त के पुत्र और उत्तराधिकारी समुद्रगुप्त ने भी अपनी माता के वंश पर गर्व किया और अपने शिलालेखों में स्वयं को 'लिच्छवी राजकुमारी महादेवी कुमारदेवी का पुत्र' बताया।
चंद्रगुप्त संभवतः मगध (बिहार) और कोसल (पूर्वी उत्तर प्रदेश) पर शासन करता था, जिसकी राजधानी पाटलिपुत्र थी। उसका राज्य विशाल था, पर पूर्णतः साम्राज्य नहीं था। उसने लगभग पंद्रह वर्षों तक, लगभग 335 ईस्वी तक शासन किया और कहा जाता है कि वृद्धावस्था में उसने अपने पुत्र समुद्रगुप्त के पक्ष में सिंहासन त्याग दिया। समुद्रगुप्त लिच्छवी राजकुमारी से उत्पन्न हुआ था और उसने अपने कई पुत्रों में से समुद्रगुप्त को चुना था। इलाहाबाद शिलालेख के अनुसार, राजा, जिसके रोंगटे खड़े हो गए थे, स्नेह से अभिभूत होकर और खुशी के आंसुओं से लथपथ होकर, समुद्रगुप्त को आदेश देते हुए कहा, "आओ, हे योग्य...संपूर्ण पृथ्वी की रक्षा करो।" शिलालेख के अनुसार, इस कार्य से दरबारी प्रसन्न हुए, परन्तु अन्य राजकुमार उदास चेहरों से देखते रहे।
इलाहाबाद का शिलालेख, जो गुप्त दरबारी कवि हरिषेण द्वारा रचित एक प्रशस्ति (प्रशंसा) है और अशोक स्तंभ पर उत्कीर्ण है, समुद्रगुप्त के बारे में जानकारी का मुख्य स्रोत है। लेकिन एक दरबारी द्वारा लिखित और संभवतः स्वयं सम्राट द्वारा अनुमोदित इस प्रशंसा को हम कितना विश्वसनीय मान सकते हैं? प्रशस्तियाँ आमतौर पर सत्य के मनगढ़ंत संस्करण होते हैं, जिनमें घोर अतिशयोक्ति और महत्वपूर्ण तथ्यों का लोप होता है, कभी-कभी तो सरासर झूठ भी होता है। विशिष्ट रूप से, इलाहाबाद की प्रशस्ति में समुद्रगुप्त को एक दिव्य अवतार के रूप में वर्णित किया गया है, 'केवल इसलिए नश्वर हैं क्योंकि वे रीति-रिवाजों का पालन करते हैं और संसार की परंपराओं का अनुपालन करते हैं, अन्यथा वे पृथ्वी पर निवास करने वाले देवता हैं।'

ये काव्यात्मक कल्पनाएँ हमें प्रशस्ति में दिए गए कथनों पर पूर्ण विश्वास न करने की चेतावनी देती हैं। हालाँकि, यह संभव है कि इसके दावे, निस्संदेह अतिरंजित हों, वास्तविक उपलब्धियों पर आधारित हों, क्योंकि समुद्रगुप्त द्वारा जारी किए गए सोने के सिक्कों की विविधता और उच्च गुणवत्ता, तथा उन पर अंकित आकृतियाँ और लेख, यह दर्शाते हैं कि समुद्रगुप्त वास्तव में एक महान शासक और बहुमुखी प्रतिभा के धनी व्यक्ति थे, जिन्होंने युद्धक्षेत्र के साथ-साथ संस्कृति के क्षेत्र में भी उत्कृष्टता प्राप्त की। उनके कुछ सिक्कों में उन्हें सोफे पर बैठकर वीणा बजाते हुए दिखाया गया है, 'कमरबंद, चुस्त टोपी, हार, कान की बालियाँ और बाजूबंद पहने हुए'। इस सिक्के के दूसरी ओर भाग्य की देवी लक्ष्मी की छवि है, जो एक बेंत की चौकी पर बैठी हैं और उनके हाथ में एक वरदान पात्र है।

समुद्रगुप्त के सिक्कों पर अंकित चित्र उन्हें एक लंबे, बलवान और मांसल शरीर वाले व्यक्ति के रूप में दर्शाते हैं, और अक्सर उन्हें धनुष-बाण या कुल्हाड़ी पकड़े हुए युद्ध मुद्रा में चित्रित किया जाता है। उनके एक सिक्के पर उन्हें 'शेर के समान पराक्रमी' बताया गया है, दूसरे पर 'अजेय राजाओं का अजेय विजेता', और एक अन्य पर लिखा है कि, 'पृथ्वी को विजयित करके, अजेय नेक कर्मों से स्वर्ग प्राप्त किया'। इसी प्रकार, इलाहाबाद शिलालेख में समुद्रगुप्त को महान पराक्रमी सैन्य प्रतिभा का धनी बताया गया है, जो युद्ध के खतरनाक खेल में आनंद लेते थे और अक्सर युद्ध के मैदान में कूद पड़ते थे। प्रशस्ति में कहा गया है कि वे 'विभिन्न प्रकार के सैकड़ों युद्धों में भाग लेने में कुशल थे, जिनमें उनके एकमात्र सहयोगी उनका पराक्रम और उनकी भुजाओं की शक्ति थी'। "[उसका शरीर] अत्यंत आकर्षक था, जो कुल्हाड़ियों, तीरों, कीलों, भालों, नुकीले तीरों, तलवारों, लोहे के डंडों, बरछियों...नुकीले तीरों...और कई अन्य हथियारों से बने सैकड़ों असंख्य घावों की प्रचुर सुंदरता से ढका हुआ था।"

समुद्रगुप्त को अपने पिता से एक विशाल राज्य विरासत में मिला था, जिसे उन्होंने एक विशाल साम्राज्य में विस्तारित किया। प्रशस्ति में लिखा है, "पृथ्वी पर उनका कोई प्रतिद्वंदी नहीं है। वे अपने अनेक गुणों की प्रचुरता और सैकड़ों पुण्य कर्मों से परिपूर्ण होकर अन्य राजाओं की प्रसिद्धि को अपने पैरों तले मिटा चुके हैं।" शिलालेख में आगे उन अनेक राजाओं की सूची दी गई है जिन्हें समुद्रगुप्त ने पराजित किया था। यद्यपि यह सूची स्पष्ट रूप से अतिरंजित है, फिर भी यह संभव है कि उन्होंने गंगा के मैदानी क्षेत्र में कई राजाओं के राज्य अपने अधीन कर लिए हों—प्रश्ति के अनुसार, उन्होंने

वहाँ नौ राजाओं को “हिंसक रूप से पराजित” किया था। बाद में, उत्तर भारत पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के बाद, ऐसा कहा जाता है कि उसने मध्य भारत के दुर्गम जंगलों को चीरते हुए कलिंग पर विजय प्राप्त की, फिर दक्षिण भारत की ओर अग्रसर हुआ, वहाँ एक दर्जन राजाओं को पराजित किया और दक्षिण में कांचीपुरम तक पहुँचा, जहाँ उसने पल्लव वंश के राजा विष्णुगोपा को परास्त किया। ऐसा दावा किया जाता है।

समुद्रगुप्त का प्रायद्वीपीय अभियान विजय प्राप्त करने के बजाय लूट और कर वसूलने के लिए था—यह एक ज्वार की लहर की तरह था जो धरती पर छा गई और फिर जल्दी ही शांत हो गई, जिससे राजनीतिक परिदृश्य में कोई खास बदलाव नहीं आया। प्रशस्ति में लिखा है कि प्रायद्वीप में, और अन्य दूरस्थ क्षेत्रों में भी, जहाँ उसने विजय प्राप्त की थी, उसके अधिकारी 'अपनी वीरता से पराजित कई राजाओं को धन, उपाधियाँ, क्षेत्र आदि लौटाने में लगे रहते थे।' इन अभियानों के माध्यम से समुद्रगुप्त का उद्देश्य अपना प्रभुत्व स्थापित करना था, न कि प्रत्यक्ष शासन। यह नीति संभवतः व्यावहारिक कारणों से प्रेरित थी, क्योंकि मौर्यों के विपरीत, गुप्तों के पास एक विशाल साम्राज्य पर शासन करने के लिए आवश्यक जटिल प्रशासनिक संगठन नहीं था।

दक्षिण के अभियानों से पाटलिपुत्र लौटकर, समुद्रगुप्त ने अश्वमेध यज्ञ किया, जो वैदिक परंपरा का महान अश्वमेध यज्ञ है। उन्होंने इसके उपलक्ष्य में स्वर्ण के सिक्के जारी किए, जिन पर एक तरफ यज्ञ में सवार अश्व और दूसरी तरफ उनकी प्रमुख रानी का चित्र बना है। इन सिक्कों पर यह लेख अंकित है, 'अश्वमेध यज्ञ करने वाले राजाओं के राजा ने पृथ्वी की रक्षा की और स्वर्ग को प्राप्त किया।' समुद्रगुप्त ने और कौन-कौन से अभियान चलाए और उनके क्या परिणाम निकले, यह ज्ञात नहीं है, क्योंकि प्रशस्ति में किए गए दावे अस्पष्ट हैं। संभवतः, उनके साम्राज्य की सीमा से लगे राजाओं ने विवेकपूर्ण ढंग से उन्हें उपहार या हरम के लिए कन्याएँ भेजीं होंगी, और प्रशस्ति लेखक ने इन भेंटों को सहायक राजाओं द्वारा दी गई श्रद्धा के रूप में समझा होगा। इस प्रकार, जैसा कि हमें चीनी स्रोतों से पता चलता है, जब श्रीलंका के राजा ने शिष्टाचार के रूप में गुप्त दरबार को उपहार भेजे और शाही राजधानी के निकट गया में एक बौद्ध मठ बनाने के लिए सम्राट की अनुमति का अनुरोध किया, तो गुप्तों ने इसे समर्पण के कार्य के रूप में लिया।

स्पष्ट है कि समुद्रगुप्त उतना महान सम्राट नहीं था जितना कि इलाहाबाद शिलालेख में वर्णित है। लेकिन निस्संदेह वह अपने समय में भारत का सबसे शक्तिशाली सम्राट था, और संभवतः कई भारतीय राजाओं ने उसे इसी रूप में स्वीकार किया था। हालांकि, उसका साम्राज्य विशाल होने के बावजूद मौर्य साम्राज्य की तुलना में छोटा था, और उसका प्रत्यक्ष शासन केवल गंगा के मैदानी क्षेत्र तक ही सीमित था। कश्मीर, पंजाब और सिंध उसके अधिकार क्षेत्र से बाहर थे, और साथ ही राजस्थान का अधिकांश भाग और उड़ीसा को छोड़कर पूरा प्रायद्वीपीय भारत भी। शक वंश का गुजरात और मालवा पर अभी भी अधिकार था।

समुद्रगुप्त की प्रसिद्धि केवल उनकी विजयों तक ही सीमित नहीं थी। प्रशस्ति के अनुसार, वे एक महान विद्वान, कवि और संगीतकार थे। शिलालेख में कहा गया है कि उनका मन बुद्धिमानों के साथ रहने के कारण आनंद से परिपूर्ण रहता था... वे किसी भी विज्ञान के सत्य और उद्देश्य को आत्मसात करने के अभ्यस्त थे... इसके अलावा, विपुल और स्पष्ट काव्य रचनाओं के कारण विद्वानों के जगत में उनका व्यापक प्रभुत्व था... उन्होंने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से बृहस्पति (देवताओं के गुरु) को, और अपने संगीत प्रदर्शनों की भव्यता से तुम्बुरु (देवताओं के संगीतकार), नारद (दिव्य ऋषि-संगीतकार) और अन्य को भी लज्जित किया था। उन्होंने अपनी अनेक काव्य रचनाओं से "कवियों के राजा" की उपाधि अर्जित की थी, जो विद्वानों के लिए प्रेरणा का स्रोत हैं। और उनके अनेक अद्‌भुत और महान कार्यों की प्रशंसा लंबे समय तक की जा सकती है।

इन सभी दावों पर हमें संदेह करना चाहिए, क्योंकि समुद्रगुप्त की कोई भी काव्य या विद्वतापूर्ण रचना मौजूद नहीं है, हालांकि उस युग के कई अन्य कवियों की रचनाएँ ज्ञात हैं। फिर भी, यह काफी संभव है कि सम्राट को साहित्य और कलाओं से गहरा लगाव था, उन्होंने स्वयं इनका पोषण किया और वे संस्कृति के उत्साही और उदार संरक्षक थे। जाहिर है, उन्हें एक विजेता होने के साथ-साथ एक कवि और संगीतकार होने पर भी उतना ही गर्व था, जैसा कि उनके सिक्कों पर वीणा बजाते हुए उनके चित्रण से स्पष्ट है, हालांकि यहाँ भी हमें यह ध्यान रखना होगा कि सिक्कों पर बने शाही चित्र आमतौर पर प्रशंसात्मक चित्र होते थे।

समुद्रगुप्त का निधन लगभग चालीस वर्षों के शासनकाल के बाद 375 ईस्वी के आसपास हुआ। उनके उत्तराधिकारी रामगुप्त नामक एक कम प्रसिद्ध राजकुमार थे,

लेकिन उन्हें उनके भाई चंद्रगुप्त द्वितीय ने पराजित कर दिया, जो गुप्त सम्राटों में सबसे प्रसिद्ध थे। यह सत्ता हथियाने की घटना विशाखदत्त द्वारा रचित छठी शताब्दी के संस्कृत नाटक देवी-चंद्रगुप्त का विषय है। यह नाटक अब केवल अन्य ग्रंथों में उद्धृत अंशों के रूप में ही उपलब्ध है, लेकिन बाद में अरबी रचना मुजमल-उत-तवारीख में इस कहानी को कई अलंकृत रूपों में पुनः वर्णित किया गया है।
अरबी ग्रंथों के अनुसार, रामगुप्त को शकों ने युद्ध में पराजित किया था और वे अपना सिंहासन तभी बचा सके जब उन्होंने अपनी रानी ध्रुवदेवी को शक सम्राट को सौंपने का वादा किया। चंद्रगुप्त इस अपमानजनक व्यवस्था से क्षुद्र हो गए, इसलिए उन्होंने रानी का वेश धारण किया और कई दासियों के साथ शक शिविर में प्रवेश किया, राजा की उनके शयनकक्ष में हत्या कर दी—चाकू से उनका पेट चीर दिया—और गुप्त वंश की प्रतिष्ठा बचाई। लेकिन इससे रामगुप्त का अपमान और बढ़ गया, इसलिए चंद्रगुप्त ने कुछ समय के लिए पागल होने का नाटक किया, ताकि वे अपने भाई की ईर्ष्या से बच सकें। अंततः, उन्होंने रामगुप्त की हत्या कर दी, सिंहासन पर कब्जा कर लिया और ध्रुवदेवी को अपनी रानी बना लिया। मोटे तौर पर देखा जाए तो यह घटना तथ्यात्मक प्रतीत होती है, क्योंकि हर्षचरित में बाण ने भी इसका उल्लेख किया है: 'शकों के राजा को दूसरे की पत्नी से प्रेम निवेदन करते समय चंद्रगुप्त ने उसकी प्रेमिका के वेश में छिपकर मार डाला।'
चंद्रगुप्त द्वितीय ने अपने पूर्ववर्तियों की विस्तारवादी नीतियों को जारी रखा और एक दीर्घ युद्ध के बाद शकों से पश्चिमी भारत को अपने राज्य में मिला लिया, जिससे वहां सदियों से चले आ रहे शक शासन का अंत हुआ। चंद्रगुप्त ने इस विजय का जश्न मनाने के लिए स्मारक सिक्के जारी किए, क्योंकि गुजरात की विजय गुप्तों के लिए बहुत महत्वपूर्ण थी, क्योंकि इससे गुजरात के बंदरगाहों से होकर गुजरने वाले पश्चिमी जगत के साथ फलते-फूलते विदेशी व्यापार तक सीधी पहुंच प्राप्त हुई और उनके आर्थिक संसाधनों में काफी वृद्धि हुई।
बाद में, ऐसा माना जाता है कि चंद्रगुप्त ने पूर्वी बंगाल और उत्तर-पश्चिमी भारत में भी अभियान चलाए। उनके शासनकाल में गुप्त साम्राज्य अपने चरम पर पहुंचा और लगभग पूरे इंडो-गंगा मैदान में, बंगाल से पंजाब तक और मध्य भारत में बंगाल की खाड़ी से अरब सागर तक फैला हुआ था। इस विस्तार के कारण चंद्रगुप्त के लिए पश्चिमी मध्य प्रदेश के उज्जैन में दूसरी राजधानी बनाए रखना आवश्यक हो गया, जो

उनके विशाल साम्राज्य में एक केंद्रीय स्थान था। आमतौर पर यह माना जाता है कि दिल्ली के लौह स्तंभ पर उत्कीर्ण चंद्र नामक राजा के सैन्य कारनामों का उल्लेख चंद्रगुप्त द्वितीय की विजयों से है। लेकिन यह बिल्कुल निश्चित नहीं है, क्योंकि शिलालेख पर कोई तिथि अंकित नहीं है और इसमें गुप्त नाम का भी उल्लेख नहीं है।
चंद्रगुप्त जितने कुशल सेनापति थे, उतने ही निपुण कूटनीतिज्ञ भी थे। उन्होंने कई राज्यों के साथ रणनीतिक विवाह संधियाँ कीं, जो उनके सैन्य अभियानों के समान ही लाभदायक सिद्ध हुईं। अपनी पुत्री प्रभावती गुप्त का विवाह दक्कन के वाकाटक राजा रुद्रसेन द्वितीय से कराना विशेष रूप से लाभकारी रहा, क्योंकि विवाह के शीघ्र ही रुद्रसेन की मृत्यु हो जाने पर प्रभावती अपने शिशु पुत्र की प्रतिनिधि बनीं और लगभग बीस वर्षों तक राज्य पर शासन किया, जिससे विशाल वाकाटक साम्राज्य वस्तुतः गुप्त साम्राज्य का हिस्सा बन गया।
चंद्रगुप्त के शुरुआती सिक्कों में उन्हें घने घुंघराले बालों वाले विशाल सिर वाले व्यक्ति के रूप में दर्शाया गया है, जबकि बाद के एक सिक्के में उन्हें लगभग गंजा दिखाया गया है। उनके कुछ सिक्कों में उन्हें शेर का वध करते हुए वीर योद्धा के रूप में चित्रित किया गया है और उन पर 'सिंह-विक्रम' (शेर वीर) लिखा है, जबकि अन्य सिक्कों में उन्हें फूल पकड़े हुए दिखाया गया है और उन पर 'रूपकृति' (व्याख्यात रूप से: कलाकार) लिखा है, जो उनकी सांस्कृतिक रुचियों को दर्शाता है। चंद्रगुप्त को विक्रमादित्य (वीरता का सूर्य) की उपाधि भी प्राप्त थी, और यह संभव है कि संस्कृत साहित्य में इसी नाम के पौराणिक राजा के बारे में वर्णित कुछ कहानियाँ उनके जीवनकाल से प्रेरित हों।
चंद्रगुप्त का शासनकाल निस्संदेह भारत में राजनीतिक स्थिरता और आर्थिक समृद्धि का काल था, और यह शास्त्रीय भारतीय सभ्यता का चरमोत्कर्ष था। चीनी बौद्ध तीर्थयात्री फा-ह्सिएन ने इस दौरान भारत में एक दशक बिताया, जिसमें से आधे से अधिक समय उन्होंने गुप्त साम्राज्य में ही व्यतीत किया। उन्होंने गुप्तों का कोई विशेष उल्लेख किए बिना भी भारत की समृद्धि और शांति की बहुत प्रशंसा की है। परंपरा के अनुसार, शास्त्रीय भारतीय संस्कृति के नवरत्न (नौ रत्न) (कालिदास सहित) चंद्रगुप्त के दरबार की शोभा बढ़ाते थे। धर्म के मामले में, वे एक कट्टर वैष्णव थे और उन्हें परम-भागवत (विष्णु के सर्वोच्च भक्त) की उपाधि से नवाजा गया था, लेकिन उन्होंने अन्य धर्मों और संप्रदायों को भी अपना संरक्षण दिया।

चंद्रगुप्त के बाद ध्रुवदेवी से उनके पुत्र कुमारगुप्त प्रथम गद्दी पर बैठे और उन्होंने लगभग चालीस वर्षों तक, 415 से 454 तक शासन किया। उनके शासनकाल के अंत में साम्राज्य को हूणों के आक्रमण का सामना करना पड़ा, जिनकी एक शाखा उस समय यूरोप में भी आतंक फैला रही थी। कुमारगुप्त उन्हें रोकने में सफल रहे, लेकिन भारत की सीमावर्ती भूमि में हूणों की उपस्थिति गुप्त साम्राज्य के लिए अशुभ संकेत थी। इसी समय के आसपास, एक रहस्यमय दक्कनी जाति, जिसका नाम अनिश्चित है लेकिन संभवतः पुष्यमित्र कहलाती थी—जिनके पास, एक समकालीन शिलालेख के अनुसार, 'मानव और धन के रूप में विशाल संसाधन' थे—ने भी गुप्त साम्राज्य की सत्ता को गंभीर रूप से चुनौती दी, लेकिन अंततः कुमारगुप्त के पुत्र स्कंदगुप्त के नेतृत्व वाली गुप्त सेना ने उन्हें पराजित कर दिया।

अपने पिता के उत्तराधिकारी स्कंद-गुप्त संभवतः किसी कनिष्ठ रानी या शाही रखैल के पुत्र थे—उन्होंने अपने शिलालेख में भी अपनी माता का नाम नहीं बताया है, यद्यपि उन्होंने अपने तीनों पूर्ववर्तियों की माताओं के नाम दिए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वे उत्तराधिकार संघर्ष के माध्यम से सत्ता में आए, क्योंकि एक समकालीन अभिलेख में कहा गया है कि 'संप्रभुता की देवी ने स्वेच्छा से उन्हें अपना पति चुना, और एक-एक करके सभी राजकुमारों को त्याग दिया।' उनके राज्याभिषेक की परिस्थितियाँ जो भी रही हों, स्कंद-गुप्त ने साम्राज्य के शत्रुओं पर निर्णायक विजय प्राप्त करके शासन करने की अपनी योग्यता सिद्ध की। उनके शासनकाल में हूणों ने एक बार फिर साम्राज्य को धमकी दी, लेकिन उन्हें एक बार फिर पराजित किया गया, और उन्होंने कुछ दशकों तक गुप्तों को और परेशान नहीं किया। स्कंद-गुप्त के शासनकाल के जूनागढ़ शिला शिलालेख में राजसी गर्व के साथ कहा गया है कि सम्राट ने 'अपने शत्रुओं को नीचा दिखाया और चारों महासागरों के जल से घिरी और समृद्ध सीमावर्ती देशों वाली पृथ्वी को अपने अधीन कर लिया।'

स्कंद-गुप्त गुप्त वंश के अंतिम महान शासक थे। उनके शासनकाल के अंत तक, अंतहीन युद्धों के कारण गुप्त साम्राज्य सैन्य रूप से पूरी तरह से कमजोर हो चुका था। युद्धों और व्यापार में गिरावट ने साम्राज्य के वित्तीय संसाधनों को भी बर्बाद कर दिया था, जैसा कि स्कंद-गुप्त द्वारा जारी किए गए सोने के सिक्कों की कम संख्या और घटिया गुणवत्ता से स्पष्ट है। आंतरिक संघर्षों ने इन समस्याओं को और भी बढ़ा दिया। बाद के गुप्त शासकों के शासनकाल में राजनीतिक परिस्थितियाँ लगातार बिगड़ती

गईं, जो साम्राज्य में बढ़ते संकट से निपटने में असमर्थ और अक्षम थे। इस प्रकार केंद्रीय सत्ता के कमजोर होने से साम्राज्य खंडित हो गया और गुप्तों की प्रभावी शक्ति बिहार और बंगाल तक ही सीमित रह गई। अब युद्ध सरदारों का युग था और प्रत्येक छोटा सरदार महाराजा, यहाँ तक कि महाराजाधिराज के रूप में भी इतराता फिरता था।

गुप्त वंश का उत्तरार्ध अत्यंत अस्पष्ट है। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि वे स्कंद-गुप्त के बाद लगभग पचास वर्षों तक, छठी शताब्दी के तीसरे दशक तक, किसी प्रकार अपने सिंहासन पर आसीन रहने में सफल रहे। सत्ता के पतन के बाद भी, गुप्त वंश समय-समय पर छोटे राजाओं या प्रांतीय अधिकारियों के रूप में इतिहास में प्रकट होता रहा। और हमें एक नए गुप्त वंश के बारे में भी जानकारी मिलती है, जिसका शाही गुप्तों से संबंध अनिश्चित है, जिसने सातवीं शताब्दी के मध्य से लगभग सौ वर्षों तक बिहार पर शासन किया और नेपाल के राजाओं के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित किए।

गुप्त साम्राज्य का शासन लगभग दो सौ वर्षों तक, चौथी और पाँचवीं शताब्दी के दौरान चला, और इस काल को आम तौर पर भारत का स्वर्ण युग माना जाता है। वास्तव में, कई मायनों में यह स्वर्ण युग था। लेकिन गुप्त काल की सांस्कृतिक समृद्धि उस प्रक्रिया की पराकाष्ठा थी जो गुप्तों से कई शताब्दियों पहले शुरू हुई थी और उस दौरान भारत की आर्थिक समृद्धि से पोषित हुई थी। यह समृद्धि मुख्य रूप से फलते-फूलते आंतरिक और बाह्य व्यापार के कारण थी, जो ईसा पूर्व पहली शताब्दी से लगातार बढ़ रहा था और गुप्त काल के आरंभिक वर्षों में अपने चरम पर पहुँच गया, क्योंकि गुप्तों के अधीन भारत के एक बड़े हिस्से में राजनीतिक स्थिरता और प्रशासनिक एकता थी। गुप्त काल में कृषि का भी महत्वपूर्ण विस्तार हुआ, और ग्रामीण समृद्धि ने बदले में व्यापार को बढ़ावा दिया। आरंभिक गुप्त अत्यंत धनी थे, उनके खजाने उनके अनेक सैन्य अभियानों के दौरान एकत्रित लूट से भरे हुए थे। और इस धन-संपत्ति ने उन्हें एक ओर तो करों को कम रखने में सक्षम बनाया - जिससे आर्थिक उद्यम को प्रोत्साहन मिला - और दूसरी ओर, एक विलासितापूर्ण और सुसंस्कृत दरबार को बनाए रखने और लेखकों, कलाकारों और बुद्धिजीवियों को उदारतापूर्वक संरक्षण देने में सक्षम बनाया।

आश्चर्य की बात है कि इस युग के साहित्य में गुप्तों का कोई उल्लेख नहीं मिलता, यहाँ तक कि फा-ह्सिएन ने भी उनका ज़िक्र नहीं किया है। न ही इस युग के किसी महान स्मारक को गुप्त संरक्षण का श्रेय दिया जा सकता है। और चंद्रगुप्त द्वितीय के दरबार की शोभा बढ़ाने वाले नौ सांस्कृतिक रत्नों का ज़िक्र भी एक बाद की कथा में ही मिलता है। यह सब हमें गुप्त स्वर्ण युग की अवधारणा से अतिशयोक्ति न करने की चेतावनी देता है। यह निस्संदेह महान सांस्कृतिक उपलब्धियों का काल था, लेकिन इसमें गुप्तों की भूमिका को इतिहासकारों द्वारा आम तौर पर बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया गया है, शायद भावनात्मक कारणों से, क्योंकि गुप्त साम्राज्य प्राचीन भारत का अंतिम महान साम्राज्य था, और भारत के संपूर्ण इतिहास में पहला (और एकमात्र) महान हिंदू साम्राज्य था। किसी भी स्थिति में, स्वर्ण युग गुप्त साम्राज्य के अंत से पहले ही समाप्त हो गया। गुप्त इतिहास का अंतिम चरण राजनीतिक अराजकता, आर्थिक पतन, शहरों के जीर्ण-शीर्ण होने और संस्कृति एवं जीवन स्तर में सामान्य गिरावट से चिह्नित था। इसके बाद भारत अंधकार युग में प्रवेश कर गया, लगभग उसी समय जब यूरोप भी उसी दौर से गुजरा था।

---

* गुप्त साम्राज्य, जिसे कुछ इतिहासकारों द्वारा भारत का स्वर्ण युग कहा जाता है, लगभग चौथी शताब्दी ईस्वी के मध्य से लेकर छठी शताब्दी ईस्वी के मध्य तक अस्तित्व में रहा। यह अंश 'प्रथम वसंत' से लिया गया है।

तीन

~

राजा चोशर *
कल्कि

सी.वी. कार्तिक नारायणन द्वारा तमिल से अनुवादित

सुंदर चोझार के सभी बच्चे बेहद सुंदर थे। सबसे छोटा, अरुलमोझिवरमन, बाकियों से कहीं अधिक सुंदर था। उसके चेहरे की सुंदरता मात्र मानवीय नहीं, बल्कि दिव्य प्रतीत होती थी। घर की स्त्रियाँ उसे इतना चूमती थीं कि उसके गाल लाल हो जाते थे। परन्तु सबसे अधिक प्रेम उसकी बड़ी बहन कुंडावई करती थी, जो उससे मात्र दो वर्ष बड़ी होने के बावजूद, उसके प्रति पूर्ण उत्तरदायित्व का भाव रखती थी। अरुलमोझिवरमन भी उससे उतना ही प्रेम करता था। वह अपनी बहन की इच्छा के

विरुद्ध कुछ भी नहीं करता था, चाहे ब्रह्मा, विष्णु और शिव का संयुक्त अनुरोध ही क्यों न हो।

बहन उसके चेहरे को न केवल जागते समय, बल्कि सोते समय भी निहारती रहती थी। "इस बालक में कोई दैवीय शक्ति है। इसे बाहर निकालना, इसे चमकाना मेरा कर्तव्य है," वह सोचती थी। वह अक्सर सोते समय उसकी हथेलियों को निहारती थी। उसे लगता था कि उसकी हथेलियों की रेखाएं शंख और चक्र के आकार की हैं। "अहा!" वह सोचती थी, 'यह बालक संसार पर राज करने के लिए ही पैदा हुआ है, यह पूरे संसार को एक छत्र के नीचे लाएगा।' लेकिन उसके लिए सिंहासन पर बैठना असंभव था। उत्तराधिकार की पंक्ति में उससे पहले दो और लोग थे। उसे शासन करने के लिए राज्य कहाँ मिलता? देवताओं ने उसके लिए क्या योजना बनाई थी? कौन जानता था? संसार विशाल था। इतने सारे देश, इतने सारे राज्य थे। क्या ऐसे पुरुष नहीं हुए जिन्होंने अपनी भुजाओं के बल पर समुद्र पार करके राज्यों पर विजय प्राप्त की? क्या बंगाल का वह राजकुमार, जिसे अपने वतन से निकाल दिया गया था, नाव से लंका नहीं भागा और वहाँ एक राजवंश की स्थापना नहीं की? और क्या वह राज्य पिछले हज़ार वर्षों से स्थिर नहीं रहा?

कुंडावई देवी लगातार इन सब बातों पर विचार करती रहीं। अंततः, जब चोल सेनाओं का लंका तक नेतृत्व कौन करेगा, इस पर चर्चा हुई, तो उन्होंने निर्णय लिया कि अरुलमोझी को यह नेतृत्व करना चाहिए।

"थंबी! अरुलमोझी! एक पल के लिए भी तुमसे बिछड़ना मुझे बहुत दुख देता है। लेकिन अब समय आ गया है कि मुझे तुमसे विदा लेनी होगी। तुम्हें सेनापति बनकर लंका जाना होगा," उसने कहा।

राजकुमार ने उत्साहपूर्वक प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। वह महल के जीवन से, अंतप्पुरम की महिलाओं के संरक्षण से मुक्त होने के लिए तरस रहा था। अब, उसकी प्रिय बहन ने स्वयं उसे जाने के लिए कहा था। भला उसे कौन रोक सकता था?

एक बार जब कुंडावई ने मन बना लिया, तो ऐसा कुछ भी नहीं था जो वह हासिल न कर सके, क्योंकि सुंदर चोझार को अपनी बेटी से बहुत स्नेह था और उस पर गहरा विश्वास था।

राजकुमार अरुलमोझिवरमन दक्षिणी सेनाओं के सेनापति बने। उन्होंने अपनी सेना का नेतृत्व करते हुए लंका पर आक्रमण किया और वहाँ कुछ समय तक युद्ध किया।

हालाँकि, युद्ध इतनी जल्दी समाप्त नहीं हुआ। उनके द्वारा अपनाई गई रणनीतियाँ भिन्न थीं और उन्हें घर से आवश्यक हथियार और साजो-सामान प्राप्त नहीं हुए। इसलिए वे अपने पिता से मिलने गए, उनसे बातचीत की, उनकी संतुष्टि के अनुसार व्यवस्था की और वापस लौटने की तैयारी की।

कुंडावई ने अपने प्रिय भाई को युद्धक्षेत्र में भेजने से पहले पझयाराई स्थित महल में शुभ समारोह आयोजित करने की योजना बनाई थी। जैसे ही अरुलमोझी ने प्रांगण में कदम रखा, युद्ध के नगाड़े गूंज उठे। शंख बजने लगे। छोटे-छोटे ढोल बजने लगे। विजय की जयकार आसमान में गूंज उठी।

---

* राजा राजा चोल दक्षिण भारत के चोल वंश से संबंधित थे। माना जाता है कि उनका जन्म लगभग 947 ईस्वी में हुआ था और उनकी मृत्यु 1014 ईस्वी में हुई थी। यह अंश 'प्रथम बाढ़' से लिया गया है।

चार

~

KRISHNADEVA RAYA *

मनु एस. पिल्लई

सन् 1509 में अपने शासनकाल के अंत से कुछ समय पहले, विजयनगर के वीर नरसिम्हा राय ने अपने मंत्री को अपने कक्ष में बुलाया और उन्हें एक अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य सौंपा। राजा मरणासन्न थे और उनके पुत्र बहुत छोटे थे। वे जानते थे कि उनके भविष्य के लिए सबसे बड़ा खतरा उनका महत्वाकांक्षी सौतेला भाई था, और अपने बच्चों की सुरक्षा के लिए यह आवश्यक था कि उनके मुख्य प्रतिद्वंद्वी को जल्द से जल्द पराजित किया जाए। अंधा करने का प्रस्ताव रखा गया, और मंत्री ने इस घृणित कार्य को अंजाम देने का वचन दिया। कुछ समय बाद जब वह राय परिवार के पास लौटा, तो वह अपने साथ खून से सनी आंखें लेकर आया, जो इस बात का प्रमाण थीं कि कार्य संपन्न हो चुका है। संतुष्ट राजा ने राहत की सांस ली और शीघ्र ही उनका निधन हो गया। उनके मन में शांति थी, क्योंकि उनके शाही बच्चों का भविष्य अब सुरक्षित हो गया था।

लेकिन यह सब छल था। मंत्री को मृत राय के भाई से विशेष लगाव था, जिसमें उसे नेतृत्व और भावी महानता के लक्षण दिखाई देते थे। मरते हुए राजा को धोखा देने के लिए उसने बकरी की आंखें दिखाईं, लेकिन असल में उसने अपने प्रतिद्वंद्वी को एक

सुरक्षित स्थान पर छिपा दिया था। अब राय के चले जाने के बाद, राजकुमार के लौटने का समय आ गया था, ताकि वह—और दिवंगत राजा के बच्चे नहीं—राज्याभिषेक कर सम्राट बन सके। कृष्ण राय—जो कृष्णदेव राय के नाम से प्रसिद्ध थे—विजयनगर के सिंह सिंहासन पर विराजमान हुए; उनके सभी प्रतिद्वंद्वियों को एक दूर के किले में भेज दिया गया, जहाँ वे वर्षों तक कष्ट भोगते रहे।

कृष्ण राय असाधारण प्रतिभा के धनी थे, लेकिन दुर्भाग्यवश, उनकी वंशानुक्रम की वैधता भी संदिग्ध थी। कहा जाता है कि उनकी माता निम्न कुल की थीं और वे कभी भी अपने भाई के बराबर नहीं थे। किंवदंती के अनुसार, उनके पिता नरस नायक ने एक दिन आकाश में कुछ चमत्कार देखा—संभवतः कोई टूटता तारा। उन्होंने तुरंत अपने ज्योतिषियों से परामर्श लिया, जिन्होंने बताया कि असाधारण प्रतिभा वाले उत्तराधिकारी के जन्म का यह शुभ समय है। लेकिन नरस नायक की पत्नी उनके पास नहीं थीं, इसलिए एक दीपक साफ करने वाली नागी—या नागम्बा—अपने स्वामी के शयनकक्ष में गईं। नौ महीने बाद, उन्होंने उन्हें एक पुत्र को जन्म दिया, जो भविष्य में कृष्ण राय बने।

यह कहानी शायद मनगढ़ंत है, जैसे बकरी की आँखों की कहानी भी, लेकिन सितारों और दिव्य प्रतीकों की चर्चा के पीछे कृष्ण राय की जटिल पृष्ठभूमि का तथ्य छिपा है। लेकिन एक मामले में वे भाग्यशाली रहे—जब उन्होंने 1509 में सिंहासन हथियाया, तो सत्ता को मजबूत करने में वैधता सबसे महत्वपूर्ण तत्व नहीं थी। आखिरकार, उनके पिता पिछले सम्राट के पुत्रों के मात्र प्रतिनिधि थे—वे पुत्र संयोगवश मर गए, और नरस नायक की संतानों ने स्वयं को शासक घोषित कर दिया। उस पिछले सम्राट ने भी बलपूर्वक ही राजगद्दी प्राप्त की थी—एक शताब्दी पहले विजयनगर की स्थापना करने वाले संगम वंश के अंतिम शासक अपने पिता की हत्या और भाई द्वारा भाई की हत्या जैसी घटनाओं में उलझे हुए थे, और 1485 में तख्तापलट के माध्यम से उन्होंने भी सत्ता हथिया ली थी।

लेकिन अनिश्चितता का माहौल अभी भी गहरा था और साम्राज्य संकट में था। उत्तर में विभिन्न सुल्तानों और उड़ीसा के राजा से खतरे मंडरा रहे थे, जबकि पास में ही ऐसे सरदार थे जिनकी अपने नवोदित शासकों के प्रति वफादारी बहुत कमजोर थी। इसलिए, अपने शासनकाल के शुरुआती वर्षों में, कृष्ण राय लगातार युद्ध में व्यस्त रहे—उन्होंने विद्रोह को कुचलने के लिए कांची की ओर कूच किया और शिवसमुद्रम को

घेर लिया। उन्होंने श्रीरंगपट्टनम पर सेना का नेतृत्व किया, ठीक उसी तरह जैसे उन्होंने इक्केरी पर आक्रमण किया। उन्होंने फारस में जन्मे बीजापुर के सुल्तान, जिसे वे एडुला खान कहते थे, से भी युद्ध किया और उसे युद्ध के मैदान में मार डाला। या अधिक स्पष्ट रूप से, जैसा कि विद्वान जी. श्रीनिवास रेड्डी अनुवाद करते हैं, उन्होंने खुरासानी योद्धाओं की खोपड़ियों को तरबूज की तरह कुचल दिया और सुल्तान के कटे हुए सिर से एक भयानक पुतला बनाया।

कृष्ण राय एक ऐसे व्यक्ति थे जो वैभव और वैभव से परिपूर्ण थे, और उन्होंने शीघ्र ही अपने साम्राज्य में व्यवस्था बहाल कर ली। कुछ लोग उन्हें विष्णु का अवतार मानते थे, जबकि शाही शिलालेख तो और भी भव्य थे। कहा जाता है, "उनकी महिमा से अभिभूत होकर सूर्य पश्चिमी सागर में ऐसे डूब गया मानो मन के कष्ट को सहन न कर पा रहा हो। मानो इस भय से कि सातों सागर उनके शत्रुओं को शरण देंगे, उनके घुड़सवारों द्वारा रौंदे गए पृथ्वी के धूल के बादलों ने उन्हें सुखा दिया।" धूल के बादल निश्चित रूप से उठे थे, क्योंकि एक बाद के पुर्तगाली इतिहासकार ने लिखा है कि जब बिस्नागा के कृष्ण राव ने युद्धक्षेत्र में प्रवेश किया, तो उनकी सेनाओं ने मैदानों और पहाड़ियों को घेर लिया और नदियों का प्रवाह रोक दिया। लगभग 700,000 सैनिकों ने उनके लिए तलवारें उठाईं, और उनके साथ इतना सामान था कि अकेले वेश्याओं की संख्या ही बीस हजार से अधिक थी।

संगम वंश के युग में, देव राय द्वितीय (शासनकाल 1425-46) के अधीन, विजयनगर विश्व के महान शहरों में से एक बन गया था। सैन्य कौशल में निपुण होने के साथ-साथ वे कला के संरक्षक भी थे। श्रीलंका से भी सम्राट को भेंटें आती थीं, ठीक उसी प्रकार जैसे मालाबार तट के धनी लोग उनके समय में विजयनगर की सर्वोच्चता को स्वीकार करते थे। दरबार में वे संस्कृत विद्वानों का स्वागत करते थे, साथ ही एक ईसाई से भी बातचीत करते थे। वे प्रसिद्ध कवि श्रीनाथ का समर्थन करते थे, ठीक उसी प्रकार विदेशी आगंतुकों से विदेशों के देशों और महान शहरों के बारे में पूछताछ करते थे। सड़कों पर खुले बाजारों में हीरे और माणिक बेचे जाते थे, और साम्राज्य का व्यापारिक नेटवर्क बंगाल की खाड़ी और अरब सागर दोनों में फैला हुआ था। वास्तव में, देव राय का शासनकाल इतना भव्य था कि एक चकित फारसी दूत के लिए विजयनगर के निवासियों के समान 'विश्व में कोई नहीं' था।

देव राय का शासनकाल संगम साम्राज्य की उपलब्धियों का शिखर था, लेकिन उनके निधन के तुरंत बाद साम्राज्य का पतन शुरू हो गया। अब विजयनगर को पुनर्जीवित करने का दायित्व कृष्ण राय पर था, और उन्होंने इस चुनौती को इतनी कुशलता से निभाया कि उनके शासनकाल के अंत तक उनकी राजधानी और उसके आसपास के इलाकों में लगभग पाँच लाख लोग बसते थे, जिससे यह शहर 'बीजिंग के बाद दूसरे स्थान पर' आ गया। यह शहर, एक प्रचलित कहावत को दोहराते हुए, संस्कृतियों का संगम स्थल था। कृष्ण राय स्वयं तटीय कर्नाटक के तुलुवा थे, जिन्होंने संस्कृत में कम से कम पाँच रचनाएँ लिखीं और तेलुगु को अपनी दरबारी भाषा के रूप में महत्व दिया। वास्तव में, उनकी एक कविता में तेलुगु को सभी क्षेत्रीय भाषाओं में 'अद्वितीय' और 'सर्वश्रेष्ठ' बताया गया है। हो सकता है कि कृष्ण राय को वास्तव में तेलुगु से प्रेम रहा हो। लेकिन यह भी संभव है कि मिश्रित मूल के राजा के लिए तेलुगु को महत्व देना, मुख्य रूप से तेलुगु प्रधान शाही व्यवस्था में वैधता प्राप्त करने का एक और तरीका था।

कृष्ण राय अंतरराष्ट्रीय प्रभावों के प्रति समान रूप से ग्रहणशील थे। तिरुपति की अपनी यात्राओं के दौरान, सम्राट देवता को अपार धन-संपत्ति अर्पित करते थे: उदाहरण के लिए, नवरत्नों (नौ पवित्र रत्नों) से जड़ा मुकुट, या 30,000 वराह सोना। उन्होंने मंदिर को अपनी और अपनी प्रमुख पत्नियों की एक आकर्षक कांस्य प्रतिमा भी भेंट की, जो विजयनगर में व्याप्त अनेक प्रेरणाओं को दर्शाती है। रानियाँ तिरुमाला देवी (उनकी मुख्य पत्नी) और चिन्ना देवी (उनकी प्रमुख प्रेमिका, जिनके बारे में कहा जाता है कि वे एक दरबारी थीं जिन्हें शाही दर्जा दिया गया था) हैं। लेकिन स्वयं राजा एक ऐसी वेशभूषा में दिखाई देते हैं जिसमें एक स्पष्ट रूप से 'विदेशी' तत्व झलकता है—कमर पर उन्होंने एक विशिष्ट भारतीय धोती पहनी है, जबकि सिर पर एक शंकु के आकार की टोपी है, जो तुर्की की फ़ेज़ टोपी जैसी दिखती है। * सांस्कृतिक नवाचार का एक अन्य स्रोत सम्राट की तीसरी पत्नी हो सकती है—उड़ीसा के राजा की पुत्री, जो मूल रूप से युद्ध की एक ट्रॉफी थी। सभी बातों से यही स्पष्ट है कि उनके अपने पति के साथ संबंध अच्छे नहीं थे, लेकिन वह अपने साथ ओडिया लोगों का एक दल लेकर आई थीं, जिसने संभवतः विजयनगर पर अपना प्रभाव डाला - एक ऐसी राजधानी जहाँ तमिल शैलियों के साथ-साथ वास्तुकला पर फारसी प्रभाव भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता था।

यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि संकीर्ण सोच वाली रूढ़िवादिता से दूर, कृष्ण राय एक ऐसे विविध साम्राज्य के शासक थे जो विशाल भूभाग पर फैला हुआ था और कई देशों के साथ व्यापार करता था। उदाहरण के लिए, उन्होंने पुर्तगालियों से संपर्क साधा। एक बार, उनका नेतृत्व क्रिस्टोवाओ डी फिगुएरेडो कर रहे थे, जिनकी सैन्य सहायता के लिए सम्राट ने इतनी सराहना की कि उन्हें दरबार में रेशमी वस्त्रों से औपचारिक रूप से सम्मानित किया गया और विशेष आदर दिया गया। लेकिन वे यह भी जानते थे कि यूरोपीय व्यापारियों का साम्राज्य के दीर्घकालिक हितों के लिए रणनीतिक महत्व था। कृष्ण राय के स्वयं के शब्दों में, 'दूर देशों से हाथी और युद्धक घोड़े आयात करने वाले व्यापारियों को शाही सेवा में रखा जाना चाहिए।' उनके साथ 'सम्मानपूर्वक व्यवहार' किया जाना था और उन्हें रहने के लिए घर और शहर बसाने के लिए दिए जाने थे। राजा ने सलाह दी, 'उनका माल ऊँची कीमत पर खरीदो और यह सुनिश्चित करो कि तुम्हारे शत्रु ऐसे संसाधनों से वंचित रहें।'

यात्री डोमिंगोस पेस ने लिखा, ‘राजा मध्यम कद-काठी के, गोरे रंग के और सुगठित शरीर वाले हैं; दुबले की तुलना में थोड़े मोटे हैं; उनके चेहरे पर चेचक के लक्षण हैं...वे एक महान शासक और न्यायप्रिय व्यक्ति हैं, लेकिन अचानक क्रोधित हो जाते हैं।’ हमें बताया जाता है कि वे हर सुबह तीन-चौथाई पाइंट तिल का तेल पीते थे, जिसके बाद वे उसी तेल से अपना पूरा शरीर मलते थे; वे अपनी कमर को एक पतले कपड़े से ढकते थे, और अपनी बाहों में मिट्टी के भारी वजन उठाते थे, फिर तलवार लेकर तब तक अभ्यास करते थे जब तक कि सारा तेल पसीने के रूप में निकल न जाए, और फिर वे अपने किसी पहलवान से कुश्ती करते थे।’ इसके बाद उनकी दैनिक सवारी होती थी, जो सूर्योदय से पहले पूरी हो जाती थी। जब दरबार में पेश होने का समय होता था, तो कृष्ण राय ‘सुनहरे गुलाबों से कढ़ी हुई’ एक कुर्ता, ‘गैलिशियन हेलमेट जैसी’ जटाधारी टोपी पहनते थे, और फिर शाही अंदाज में बैठ जाते थे (बस इतना ही कि वे नंगे पैर रहते थे)। और उनके चारों ओर न केवल उनके ब्राह्मण और हिजड़े (इस्लामी दरबारों से ली गई एक और अवधारणा) थे, बल्कि वह बूढ़ा मंत्री भी था जिसने एक बार बकरी की आंखों की एक जोड़ी से कृष्ण राय की जान बचाई थी।

एक योद्धा-राजा के रूप में कृष्ण राय अत्यंत शक्तिशाली थे, और जैसे-जैसे उनकी विजय बढ़ती गई, उनका अभिमान और आत्मविश्वास भी चरम पर पहुँचता गया। उदाहरण के लिए, रायचूर दोआब सदियों से इस क्षेत्र की प्रतिद्वंद्वी शक्तियों के बीच

विवाद का केंद्र रहा था। अत्यंत उपजाऊ होने के साथ-साथ लौह और हीरा भंडारों से समृद्ध, कृष्णा और तुंगभद्रा नदियों के बीच स्थित यह त्रिकोणीय जिला बारी-बारी से विजयनगर और उत्तर में स्थित उसके प्रतिद्वंद्वी सुल्तानों के अधीन रहा। 1520 में, दोआब इस्माइल आदिल शाह के कब्जे में था—जो उसी 'एडुला खान' का पुत्र था जिसका सिर कृष्ण राय ने अपने भाले पर टांग दिया था। 1515-17 के बीच उड़ीसा के विरुद्ध अपनी सफलताओं के बाद, राय ने अपना ध्यान रायचूर की ओर मोड़ा, और तुरंत अपनी सेना एकत्रित करके किले पर आक्रमण कर दिया।

दुर्भाग्य से, कृष्ण राय के पास रायचूर की मजबूत पुरानी दीवारों को तोड़ने के लिए तोपखाना नहीं था। लेकिन अपनी सूझबूझ और जटिल समस्याओं के सरल समाधान खोजने की क्षमता के चलते, उन्होंने कुल्हाड़ी और लोहे की छड़ों से लैस सैनिकों को तैनात किया और सबसे आदिम तरीके से दीवारों को तोड़ना शुरू कर दिया (ऐसा प्रतीत होता है कि मजदूरों को किले की दीवारों से हटाए गए पत्थरों की संख्या के आधार पर भुगतान किया जाता था)। इसी घेराबंदी के दौरान खबर आई कि आदिल शाह स्वयं बीजापुर स्थित अपनी राजधानी से कृष्ण राय से युद्ध करने आ गए हैं। एक इतिहासकार के अनुसार, 'कृष्णा राव ने किसी को बिना बताए ही घोड़े पर सवार होने का आदेश दिया और पूरी गति से इस्माइल की सेना की ओर चल पड़े, जो अभी-अभी कृष्णा नदी पार कर चुकी थी।'

19 मई का युद्ध आदिल शाह के लिए एक भयानक पराजय साबित हुआ। अपनी जीत के प्रति आश्वस्त इस्माइल ने 18,000 घुड़सवारों, 120,000 पैदल सैनिकों और कम से कम 150 हाथियों के साथ नदी पार की थी। ये संख्याएँ प्रभावशाली तो थीं, लेकिन वास्तव में वे कृष्णा राया की सेना के सामने अपर्याप्त थीं। इस्माइल को अपनी जीत का जो आत्मविश्वास था, वह उसकी नियमित सेना नहीं, बल्कि उसके पास मौजूद 900 छोटी और भारी तोपें थीं। सामान्य तौर पर देखा जाए तो यह एक चतुर रणनीति थी, लेकिन आदिल शाह एक महत्वपूर्ण बात भूल गया था। उसने अपनी तोपों को एक सीधी पंक्ति में तैनात तो कर दिया, लेकिन उसने तोपों को लोड और रीलोड करने में लगने वाले समय को ध्यान में नहीं रखा। अंततः उनकी सुस्ती ने उसे धोखा दिया, और जब कृष्णा राया के 27,000 घुड़सवारों ने सुल्तान के भयभीत सैनिकों को कुचलने के लिए हवा की तरह घात लगाकर हमला किया, तो धरती पर खून का सैलाब उमड़ पड़ा।

सुल्तान की वापसी विनाशकारी साबित हुई, आदिल शाह के और भी सैनिक नदी में डूबकर मारे गए। इस बीच, सम्राट अपने सैनिकों और 20 पुर्तगाली निशानेबाजों के एक दल के साथ रायचूर की घेराबंदी में लौट आए। देखते ही देखते, किले की दीवारों से रक्षकों को एक-एक करके मार गिराया गया, और 14 जून को, जब चौकी के कमांडर ने एक तोप से अपना सिर बाहर निकालने का फैसला किया, तो उसे तुरंत सिर में गोली मार दी गई। इसके साथ ही घेराबंदी समाप्त हो गई और किले के अंदर मौजूद आदिल शाह के सैनिकों ने सम्राट को किले की चाबियां सौंप दीं। प्राचीन काकतीय राजवंश द्वारा निर्मित और सल्तनत काल के शासकों द्वारा मजबूत किए गए इस ढांचे में, कृष्ण राय ने अब विजयी रूप से एक उत्तरी प्रवेश द्वार जोड़ा, जिसमें दक्षिण से लिए गए सौंदर्य और शैलीगत तत्व थे, और महान हिंदू महाकाव्यों, महाभारत और रामायण के दृश्यों को दर्शाया गया था।

एक दिन राय ने बड़ी समझदारी से सलाह दी, 'राजदूतों की उपस्थिति में कभी कठोर भाषा का प्रयोग न करें, क्योंकि सुलह का समय आ सकता है।' निराश और हताश आदिल शाह अब इसी सुलह की उम्मीद में विजयनगर में एक राजदूत भेजकर अपने क्षेत्र और तोपों की वापसी की मांग कर रहे थे, जो कृष्ण राय के हाथों में चले गए थे। लेकिन सम्राट ने थोड़ा मज़ा लेने का फैसला किया। बीजापुरी दूत को पहले तो अंतहीन प्रतीक्षा कराई गई, और जब अंततः उनसे मिलने का समय मिला, तो राय ने उनके सामने एक साधारण सी शर्त रखी, जिस पर सब कुछ निर्भर था: वे इस्माइल को उसकी भूमि और तोपें तभी लौटाएंगे, जब आदिल शाह विजयनगर आकर सम्राट के पैर चूम लें!

रिचर्ड ईटन के शब्दों में, इसके बाद 'असाधारण कूटनीति' का दौर चला, लेकिन कृष्ण राय की मांग आश्चर्यजनक नहीं थी। उदाहरण के लिए, 1513 में जब उन्होंने उड़ीसा के गजपति के चाचा को हराया था, तब युद्ध लंबा और निराशाजनक रहा था। क्रोधित होकर राय ने जोर से घोषणा की थी कि 'जब तक वह अपने प्रतिद्वंद्वी के सिर पर पैर न रख दें, तब तक वह उस दिन स्नान नहीं करेंगे'। यह प्रतिज्ञा शत्रु के मन में भय पैदा कर गई, क्योंकि जब राजा ऐसी घोषणाएँ करते थे, तो यह इस बात का संकेत होता था कि अब वे सफलता प्राप्त करने के लिए कोई कसर नहीं छोड़ेंगे। इसलिए, गजपति के चाचा ने बुद्धिमानी से शांति की अपील की—उन्होंने कृष्ण राय को अपना मुकुट भेजा, अपने सिर के बदले, और इस पर पैर रखने के बाद ही सम्राट ने स्नान किया।

विजयनगर की जीत के साथ युद्ध समाप्त हुआ—और उसके राजा को स्नान का अवसर मिला।

यह घटना शायद इसलिए महत्वपूर्ण साबित हुई, क्योंकि इस्माइल जानता था कि सम्राट के पैर चूमने से इनकार करने पर उसे भारी कीमत चुकानी पड़ सकती है। इसलिए उसने अपने राजदूत को टालमटोल करने को कहा। राजदूत ने बताया कि सुल्तान कृष्ण राय के पैर चूमने के लिए सहर्ष तैयार था। लेकिन दुर्भाग्यवश, एक संप्रभु शासक होने के नाते वह विदेशी धरती पर कदम नहीं रख सकता था। दूसरे शब्दों में, वह विजयनगर आकर यह कार्य नहीं कर सकता था, हालांकि उसे यह कार्य आपत्तिजनक नहीं लगता था। यह एक बेतुका बहाना था, और स्वाभाविक रूप से, कृष्ण राय को इससे कोई विश्वास नहीं हुआ—हमेशा की तरह शरारती स्वभाव के कृष्ण राय ने अब बीजापुर जाकर सीधे अपना पैर आदिल शाह के सामने चूमने का प्रस्ताव रखा। इस्माइल के राजधानी से भागते ही विजयनगर की सेना ने उसे घेर लिया। सुल्तान के वहाँ न मिलने पर शहर लगभग खंडहर में तब्दील हो गया। जैसा कि कृष्ण राय ने अपनी कविता में दावा किया है, उन्होंने 'यवन (मुस्लिम) राजा के विरुद्ध भयंकर हाथियों का दल लेकर उसके आकाश को छूने वाले रत्नजड़ित महलों को ध्वस्त कर दिया था'।

विजयनगर और उत्तरी दक्कन के सल्तनतों के बीच की गाथा में यह एक विचित्र मोड़ था। लेकिन कहानी अभी खत्म नहीं हुई थी। 1523 में, कृष्ण राय ने इस क्षेत्र में एक और अभियान का नेतृत्व किया, और इस बार वे गुलबर्गा की ओर बढ़े, जो प्राचीन बहमनी सुल्तानों की राजधानी थी। बहमनी वंश ने इस क्षेत्र में उसी समय सत्ता स्थापित की थी जब संगमों ने विजयनगर की स्थापना की थी। दक्षिण में हुए तख्तापलटों के कारण कृष्ण राय के परिवार का उदय हुआ, जबकि उत्तर में बहमनी राज्य विभाजित हो चुका था—आदिल शाह का वंश पुराने साम्राज्य के खंडहरों से जन्मी पाँच उत्तराधिकारी रियासतों में से एक था। लेकिन फिर भी एक नाममात्र का बहमनी शासक था, जिसकी नाममात्र की पूजा की जाती थी। अब इस नाममात्र के शासक की राजधानी पहुँचकर, कृष्ण राय ने स्वयं उसका राज्याभिषेक किया। उन्होंने घोषणा की कि यह सुल्तान उत्तरी दक्कन का वैध शासक है, और इस घटना की स्मृति में, सम्राट ने एक और उपाधि धारण की: यवन राज्य स्थापना आचार्य—वह हिंदू सम्राट जिसने मुसलमानों के राज्य को पुनः स्थापित किया।

लेकिन कृष्ण राय केवल तलवारबाज़ ही नहीं थे, बल्कि सिद्धांतहीन भी थे। तेलुगु में पांच महानतम काव्य कृतियों में से एक मानी जाने वाली उनकी अमुक्तमाल्यद में राज्य और राजत्व के मामलों पर दिए गए उनके उपदेशों का भरपूर समावेश है। जी. श्रीनिवास रेड्डी के अनुसार, यह कृति मुख्य रूप से तमिल भक्ति संत अंडाल और विष्णु के प्रति उनकी भक्ति का गुणगान करती है, साथ ही कृष्ण राय के वैष्णव झुकावों को भी दृढ़ता से स्थापित करती है—विजयनगर की स्थापना करने वाले संगम शैव थे, और अब हम देखते हैं कि दरबार दूसरे पक्ष की ओर मुड़ रहा है। तमिल परंपरा और संस्कृत दोनों से पोषित, अमुक्तमाल्यद एक उच्च कोटि की कविता है। उदाहरण के लिए, जब अंडाल—या गोदा, जैसा कि उन्हें यहाँ कहा गया है—युवावस्था की ओर अग्रसर होती हैं, तो कृष्ण राय लिखते हैं:

जैसे-जैसे उसकी सुंदरता निखरती गई
वह आधी खुली आंखों से दुनिया को देख रही थी।
वह शांत और गंभीर हो गई, उसकी भौहें गहरी हो गईं।
और वह बच्चों की गुड़ियों से खेलने पर नाक-भौं सिकोड़ती थी।
उसके हाथों की हथेलियाँ और उसके पैरों के तलवे
उसका रंग खूबसूरत गुलाबी हो गया और उसके बाल लंबे और घुंघराले हो गए।
उसकी कमर पतली हो गई और स्तन सुडौल हो गए।
अपने बचपन को पीछे धकेलते हुए।
और हालांकि दूसरों ने इन बदलावों पर ध्यान नहीं दिया,
उसे अपने शरीर के प्रति जागरूकता आने लगी।
और इस तरह, दिन-ब-दिन उसका बचपन उससे दूर होता चला गया।

लेकिन कविता शुरू करने से पहले, वे अपने राजवंश की प्रशंसा करते हुए अपने राजसी दर्शन का विस्तृत वर्णन करते हैं। हालाँकि इस वंश-स्तुति का अधिकांश भाग उनके दरबारी कवि अल्लासानी पेद्दन्ना से लिया गया है (और सम्राट के दरबार में आठ प्रसिद्ध कवि थे), फिर भी कृष्ण राय की अपनी रचना में एक निश्चित स्पष्टता है जो इसे विशिष्ट बनाती है। उदाहरण के लिए:

एक राजा को अपने साम्राज्य की देखभाल अपने शरीर की तरह करनी चाहिए।
क्योंकि दोनों एक ही हैं।
उन्हें चिकित्सकों से परामर्श लेना चाहिए, जैसे वे मंत्रियों से लेते हैं।

और दावतों के साथ-साथ टैक्स में भी कटौती करें।
उसे अपनी मांसपेशियों को मजबूत करना चाहिए और अपना मोटापा कम करना चाहिए।
वह अपने शरीर के अंगों को उसी प्रकार जानता था जैसे अपनी भूमि की संपत्ति को।
उसे तेल लगाकर मालिश करनी चाहिए और अच्छी तरह से नहलाना चाहिए।
मानो वह अपने शत्रुओं को कुचलकर उनका सफाया कर रहा हो।
उन्हें अपनी त्वचा को स्वस्थ रखना चाहिए और अपने दांतों की देखभाल करनी चाहिए।
जैसे ब्राह्मणों के नेतृत्व में एक सुव्यवस्थित समाज।
राजा को हमेशा स्वस्थ रहना चाहिए।
उसके शरीर पर प्रभाव पड़ने से साम्राज्य प्रभावित होता है।

अन्यत्र हमने फिर से पढ़ा:

एक राजा को सहनशीलता बरतनी चाहिए
अपने नायकों की शेखी बघारने वाली बातें,
हालांकि वह स्वयं एक महान नायक है,
इससे उसके सैनिक खुश होंगे।
क्या यह राजा का कर्तव्य नहीं है?
यह सुनिश्चित करने के लिए कि उसकी अपनी वीरता
क्या यह उनके आकाओं में परिलक्षित होता है?

अमुक्तमाल्यदा में प्रासंगिक सभी बातें समाहित हैं: एक आदर्श राजा की दिनचर्या, राजकुमार के लिए उपयुक्त वस्त्र और आभूषण, और कब शक्ति का प्रदर्शन करना बुद्धिमानी है और कब कूटनीति अपनाना बेहतर है। हमें पता चलता है, 'यदि शत्रु के पास शक्तिशाली सेना हो, तो उसे उपहार और सम्मान देना बुद्धिमानी है।' लेकिन यदि 'जासूसों की रिपोर्टों से पता चलता है कि शत्रु कमजोर है, तो पीछे न हटें, क्योंकि उसे घेर लेना ही सर्वोत्तम है।' कृष्ण राय के मन में मुख्य शत्रु उड़ीसा के गजपति (एक हिंदू) और दक्कन के सुल्तान (मुस्लिम, हालांकि उनकी रगों में बहुत हिंदू रक्त था - एक बहमनी सुल्तान ने तो एक बार विजयनगर की राजकुमारी से विवाह भी किया था) थे। लेकिन ये रणनीतिक प्रतिद्वंद्विताएँ थीं: धर्म स्वयं सम्राट के राजनीतिक दृष्टिकोण और निर्णयों का मार्गदर्शन नहीं करता था, भले ही उस समय की राजनीति

आमतौर पर आस्था की शब्दावली में ही व्यक्त होती थी। इसीलिए विजयनगर के शासकों को खुद को 'हिंदुरया सुरत्रना' या हिंदू सुल्तान कहने में कोई विरोधाभास नहीं दिखता था - वे सचेत रूप से हिंदू थे, लेकिन साथ ही साथ सुल्तान की इस्लामी उपाधि का भी आनंद लेते थे।

वास्तव में, जहाँ कहीं भी हमें सम्राट द्वारा धर्म को संरक्षण देने के उदाहरण मिलते हैं, वहाँ भक्ति और राजनीतिक सूझबूझ का मिश्रण देखने को मिलता है। उदाहरण के लिए, कृष्ण राय माधव ब्राह्मणों के अधीन मठों के प्रवर्तक थे। ये मठ विद्रोही या नव-विजित क्षेत्रों के पुराने मंदिरों में स्थापित किए गए थे। उदाहरण के लिए, 1511 में कांची में हुए विद्रोह के बाद, कृष्ण राय ने वहाँ का एक गाँव ऋषि व्यासतीर्थ को दान कर दिया, वहीं आदिल शाह से रायचूर छीनने के बाद, उसी व्यक्ति को वहाँ एक मठ स्थापित करने के लिए अनुदान प्राप्त हुआ। इन मठों ने न केवल मौजूदा सामाजिक नेटवर्क से जुड़कर और स्थानीय प्रभाव का लाभ उठाकर राजा को वैधता प्रदान की, बल्कि उनकी गतिविधियों ने आर्थिक लेन-देन को भी बढ़ावा दिया। वैलेरी स्टोकर के शब्दों में, वे 'साम्राज्य की अनौपचारिक चौकियाँ' बन गए, पुराने स्थानों में संरक्षण की नई संरचनाएँ बनाईं और सम्राट को विभिन्न स्थानीय लोगों की रोजमर्रा की वास्तविकता से मजबूती से जोड़ दिया।

लेकिन सभी असाधारण कहानियों की तरह, कृष्ण राय की कहानी का भी अंततः अंत हो गया। 1529 तक, युद्धक्षेत्र और सम्राट के रूप में उनकी तमाम सफलताओं के बावजूद, और कवि-राजा के रूप में साहित्यिक क्षेत्र में उनकी बुलंदियों के बावजूद, उन्हें एक पुरुष उत्तराधिकारी की कमी सता रही थी। उनकी बेटियाँ थीं, लेकिन उनके बेटों में से कोई भी जीवित नहीं रहा। दो पुत्रों की अपने प्रख्यात पिता से बहुत पहले ही असमय मृत्यु हो गई, जबकि तीसरा पुत्र कृष्ण राय के पतन के समय सिंहासन पर बैठने के लिए बहुत छोटा था। यह उनके स्वयं के सत्ता में आने की एक विचित्र पुनरावृत्ति थी—एक ऐसी स्थिति जहाँ एक मरणासन्न सम्राट अपने वंशजों के भविष्य को लेकर चिंतित था। और अंत में, कृष्ण राय का उत्तराधिकारी भी उनकी संतानों में से नहीं, बल्कि वह व्यक्ति था जिसे उन्होंने सिंहासन ग्रहण करने के समय वर्षों पहले गिरफ्तार कर लिया था। दरअसल, बकरी की आंखों की कहानी भी राय परिवार के लिए मुसीबत बन गई: 1520 के दशक में जब उनका एक बेटा अचानक खो गया, तो शक उसी मंत्री पर गया जिसने 1509 में राजा की जान बचाई थी। और गुस्से में

आकर, कृष्ण राय ने उस बूढ़े व्यक्ति को एक बेहद क्रूर सजा दी—उसकी आंखें निकाल दी गईं।

नोट: लेखक कृष्ण राय की अमुक्तमाल्यदा के उत्कृष्ट अनुवाद के लिए विद्वान जी. श्रीनिवास रेड्डी के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता है।

सूत्रों का कहना है

अयंगर, एस. कृष्णास्वामी, ए हिस्ट्री ऑफ तिरूपति, खंड। द्वितीय, मद्रास: सांबैया पंतुलु, 1941।

चेकुरी, क्रिस्टोफर, 'विश्व साम्राज्य में एक 'हिस्सा': विजयनगर में व्यवहार में संप्रभुता के रूप में नायमकारा, 1480-1580', सोशल साइंटिस्ट, खंड 40, संख्या 1-2, जनवरी-फरवरी 2012, पृष्ठ 41-67।

ईटन, रिचर्ड, '"मेरे पैर चूमो", राजा ने कहा: आग्नेयास्त्र, कूटनीति और रायचूर की लड़ाई, 1520', मॉडर्न एशियन स्टडीज, खंड 43, संख्या 1, 2009, पृ. 289–313.

एकंबरम, सी. एन., कृष्ण देव राय: उनका जीवन और समय, मद्रास: द गार्जियन प्रेस, 1910।

हाइग, वोल्सेली एड., द कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, वॉल्यूम III: तुर्क और अफगान, कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1928।

पिल्लई, मनु एस., विद्रोही सुल्तान: खिलजी से शिवाजी तक दक्कन, नई दिल्ली: जगरनॉट बुक्स, 2018।

रामनय्या, एन वेंकट, विजयनगर के तीसरे राजवंश के इतिहास में अध्ययन, मद्रास: मद्रास विश्वविद्यालय, 1935।

Rao, K. G. Gopala Krishna, Sri Krishnadevaraya: Monarch of Vijayanagara , Bangalore: Bharatiya Vidya Bhavan, 2010.

राव, एम. रामा, कृष्णदेवराय, नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट ऑफ इंडिया, 1971।

राव, वेलचेरु नारायण, 'नारियल और शहद: मध्यकालीन आंध्र में संस्कृत और तेलुगु', सोशल साइंटिस्ट, खंड 23, संख्या 10-12, अक्टूबर-दिसंबर 1995, पृष्ठ 24-40।

राऊ, जी. हरि सर्वोत्तम, द नेग्लेक्टेड एम्परर पोएट: ए क्रिटिकल एसे ऑन कृष्णदेव राय के अमुक्तमाल्यदा, मद्रास: ज्योतिष्मती प्रेस, 1912।

रायचौधरी, तपन और हबीब, इरफान, संपादक, द कैम्ब्रिज इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया, खंड I: लगभग 1200-लगभग 1750, कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1982, 1987।

रेड्डी, डी. रामलिंगा, विजयनगर और आधुनिक भारत के लिए इसके सबक, मद्रास: मद्रास विश्वविद्यालय, 1967।

रेड्डी, श्रीनिवास जी., 'कृष्णदेवराय का आमुक्तमाल्यद: सोलहवीं शताब्दी के दक्षिण भारत में भाषा, शक्ति और भक्ति', अप्रकाशित पीएचडी थीसिस, बर्कले: कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय।

सेवेल, रॉबर्ट, एक भुला हुआ साम्राज्य (विजयनगर): भारत के इतिहास में एक योगदान, लंदन: स्वान सोन्नेनशाइन एंड कंपनी लिमिटेड, 1900।

स्टीन, बर्टन, द न्यू कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया: विजयनगर, कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1989।

स्टोकर, वैलेरी, विजय नगरी में विवाद और संरक्षण: व्यासतीर्थ, हिंदू संप्रदायवाद और सोलहवीं शताब्दी का विजयनगर दरबार, ओकलैंड: कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय प्रेस, 2016।

वैगनर, फिलिप बी., टाइडिंग्स ऑफ द किंग: ए ट्रांसलेशन एंड एथनोहिस्टोरिकल एनालिसिस ऑफ द रायवाकाकामु, होनोलूलू: यूनिवर्सिटी ऑफ हवाई प्रेस, 1993।

कृष्णदेव राय विजयनगर साम्राज्य के सम्राट थे। उन्होंने 1509-29 ईस्वी तक शासन किया।

एडुला खान का उल्लेख कृष्ण राय के अमुक्तमाल्यदा में मिलता है और यह आदिल खान का बिगड़ा हुआ रूप है, जिससे भविष्य में आदिल शाह की उपाधि व्युत्पन्न हुई। अन्य स्रोतों के अनुसार यूसुफ आदिल खान की मृत्यु 1510-

11 में हुई थी, लेकिन कृष्ण राय के इस दावे को देखते हुए कि उन्होंने उसका सिर भाले पर टांग दिया था, यह संभव है कि बीजापुर के प्रथम सुल्तान की मृत्यु इसी प्रकार हुई हो।
विजयनगर काल के लेपाक्षी भित्ति चित्रों में भी कई आकृतियाँ एक जैसी टोपियाँ पहने हुए दिखाई देती हैं, जिनमें दो लटकती हुई लड़ियाँ हैं। कुछ लोगों का मानना है कि कृष्ण राय ने कांसे का मुकुट या किरीटम पहना हुआ है, लेकिन आभूषणों और रत्नों की स्पष्ट अनुपस्थिति को देखते हुए यह संभावना कम लगती है, जो किरीटम की विशिष्ट विशेषताएँ हैं।
* यवन, जो आयोनियन का संस्कृत व्युत्पन्न है, का प्रयोग सर्वप्रथम यूनानियों के लिए किया जाता था, लेकिन शीघ्र ही इसका प्रयोग सभी विदेशियों के लिए, और मुसलमानों और तुर्कों के लिए भी, तथा बाद में यूरोपीय औपनिवेशिक शक्तियों के लिए किया जाने लगा।

पाँच

~

दुनिया का आश्रय *

सलमान रुश्दी

भोर होते ही अकबर महान के नए "विजय नगर" सिकरी के बलुआ पत्थर के भव्य महल ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो लाल धुएँ से बने हों। अधिकतर नगर जन्म लेते ही शाश्वत प्रतीत होने लगते हैं, परन्तु सिकरी तो हमेशा एक मृगतृष्णा की तरह ही प्रतीत होता था। जैसे-जैसे सूर्य अपने चरम पर पहुँचता गया, दिन की भीषण गर्मी पत्थरों पर पड़ती गई, मानो कानों को हर ध्वनि सुनाई न दे रही हो, हवा किसी भयभीत हिरण की तरह काँप रही हो, और विवेक और भ्रम के बीच, कल्पना और वास्तविकता के बीच की सीमा धुंधली होती जा रही हो।
सम्राट भी कल्पनाओं के वश में आ गए। उनकी महलों में रानियाँ भूतों की तरह मंडराती थीं, राजपूत और तुर्की सुल्तानाएँ उन्हें पकड़ने का खेल खेलती थीं। इनमें से एक शाही हस्ती का अस्तित्व ही नहीं था। वह एक काल्पनिक पत्नी थी, जिसे अकबर ने अकेले बच्चों की तरह काल्पनिक मित्रों की कल्पना में गढ़ा था। कई जीवित, भले ही काल्पनिक, पत्नियों की उपस्थिति के बावजूद, सम्राट का मानना था कि असली रानियाँ ही प्रेत थीं और उनकी काल्पनिक प्रेमिका ही वास्तविक थी। उन्होंने उसे जोधा नाम दिया और किसी ने भी उनका विरोध करने की हिम्मत नहीं की। महिलाओं के एकांत कक्षों में, अपने महल के रेशमी गलियारों में, जोधा का प्रभाव और शक्ति बढ़ती गई। महान संगीतकार तानसेन ने उनके लिए गीत लिखे, और फारसी संगीतकार अब्दस समद ने स्वयं उनका चित्र बनाया - बिना उनका चेहरा देखे, एक सपने की स्मृति से

उनका चित्र बनाया, और जब सम्राट ने अपना काम देखा तो पृष्ठ से चमकती सुंदरता पर ताली बजाई। “आपने उसका सजीव चित्रण किया है,” वह चिल्लाया, और अब्दस समद को राहत मिली और उसे ऐसा महसूस होना बंद हो गया जैसे उसका सिर उसकी गर्दन से बहुत ढीला जुड़ा हुआ हो; और, सम्राट के शिल्पकार की इस अद्भुत कृति के प्रदर्शित होने के बाद, पूरे दरबार ने जोधा को वास्तविक मान लिया, और सबसे महान दरबारी, नवरत्न, या नौ रत्न, सभी ने न केवल उसके अस्तित्व को बल्कि उसकी सुंदरता, उसकी बुद्धिमत्ता, उसकी चाल की गरिमा और उसकी आवाज की कोमलता को भी स्वीकार किया। अकबर और जोधाबाई! आह, आह! यह युग की प्रेम कहानी थी।

अंततः सम्राट के चालीसवें जन्मदिन के अवसर पर शहर बनकर तैयार हो गया। इसे बनने में बारह लंबे, तपते साल लगे थे, लेकिन कुछ समय के लिए उन्हें ऐसा लगा मानो यह जादू से, साल दर साल, सहजता से बन रहा हो। सम्राट के लोक निर्माण मंत्री ने नई राज राजधानी में उनके प्रवास के दौरान किसी भी निर्माण कार्य को आगे बढ़ने नहीं दिया था। जब सम्राट वहाँ रहते थे, तो पत्थर तराशने वालों के औजार शांत हो जाते थे, बढ़ई कीलें नहीं ठोकते थे, चित्रकार, जड़ाई का काम करने वाले, कपड़े टांगने वाले और पर्दे तराशने वाले सब गायब हो जाते थे। कहा जाता है कि उस समय सब कुछ आनंदमय होता था। केवल आनंद की आवाज़ें ही सुनाई देती थीं। नर्तकियों के टखनों पर बंधी घंटियाँ मधुरता से गूंजती थीं, फव्वारे झनझनाते थे और प्रतिभाशाली तानसेन का मधुर संगीत हवा में गूंजता रहता था। सम्राट के कानों में फुसफुसाकर कविताएँ सुनाई जाती थीं, और गुरुवार को पचीसी के आँगन में दासी लड़कियों के साथ शतरंज के बिसात पर मोहरों की तरह खेल-कूद होती थी। पर्दों से ढकी दोपहरों में, सरकते पंखों के नीचे, प्रेम के लिए एक शांत समय होता था।

कोई भी शहर केवल महलों से नहीं बना होता। असली शहर, जो लकड़ी, मिट्टी, गोबर, ईंट और पत्थर से बना होता है, शाही आवासों वाले विशाल लाल पत्थर के चबूतरे की दीवारों के नीचे बसा होता है। इसके मोहल्ले जाति और व्यापार दोनों के आधार पर तय होते थे। कहीं चांदी के कारीगरों की गली थी, कहीं गर्म दरवाजों वाली, खड़खड़ाती हुई शस्त्रागार की दुकानें, और कहीं उस तीसरी गली के नीचे चूड़ियों और कपड़ों का अड्डा। पूर्व में हिंदू बस्ती थी, और उससे आगे, शहर की दीवारों के चारों ओर, फारसी इलाका, उससे आगे तुरानी क्षेत्र, और उससे आगे, शुक्रवार मस्जिद

के विशाल द्वार के पास, भारतीय मूल के मुसलमानों के घर थे। ग्रामीण इलाकों में जगह-जगह रईसों के विला, कला-कलाशाला और शास्त्रशाला, जिसकी प्रसिद्धि पूरे देश में फैल चुकी थी, संगीत का एक मंडप और नृत्य प्रदर्शन के लिए एक और मंडप थे। इन निचले सिकरियों में से अधिकांश में आलस्य के लिए बहुत कम समय था, और जब सम्राट युद्धों से लौटते थे, तो मिट्टी के शहर में मौन का आदेश घुटन जैसा लगता था। राजाओं के राजा की शांति भंग होने के डर से मुर्गियों को वध के समय मुंह बंद करना पड़ता था। अगर गाड़ी का पहिया चरमराता तो सारथी को कोड़े पड़ते, और अगर वह कोड़े के दौरान चिल्लाता तो सजा और भी कड़ी हो सकती थी। प्रसव पीड़ा से गुजर रही महिलाएं अपनी चीखें नहीं रोकती थीं, और बाजार का मूक प्रदर्शन एक प्रकार का पागलपन था। लोग कहते थे, "जब राजा यहां होते हैं, तो हम सब पागल हो जाते हैं," और जल्दी से कहते थे, क्योंकि हर जगह जासूस और गद्दार थे, "खुशी से।" मिट्टी का शहर अपने सम्राट से प्रेम करता था, वह इस बात पर जोर देता था, बिना शब्दों के जोर देता था, क्योंकि शब्द उस वर्जित पदार्थ, ध्वनि से बने थे। जब सम्राट एक बार फिर अपने अभियानों पर निकले—गुजरात और राजस्थान, काबुल और कश्मीर की सेनाओं के खिलाफ उनके कभी न खत्म होने वाले (हालांकि हमेशा विजयी) युद्ध—तब मौन का पर्दा टूट पड़ा, तुरही बज उठीं, जयकारे गूंज उठे, और लोग आखिरकार एक-दूसरे से वो सब कुछ कह पाए जो महीनों तक अनकहा रह गया था: मैं तुमसे प्यार करता हूँ। मेरी माँ मर गई है। तुम्हारा सूप स्वादिष्ट है। अगर तुमने मुझे मेरा बकाया नहीं दिया, तो मैं तुम्हारी कोहनियाँ तोड़ दूँगा। मेरे प्रिय, मैं भी तुमसे प्यार करता हूँ। सब कुछ।

मिट्टी के शहर अकबर के लिए सौभाग्य की बात यह थी कि सैन्य मामलों के चलते वह अक्सर शहर से दूर रहते थे। वास्तव में, वह लगभग हमेशा ही शहर से बाहर रहते थे, और उनकी अनुपस्थिति में गरीब लोगों की भीड़ का शोर और बेकाबू निर्माण श्रमिकों का कोलाहल, असहाय रानियों को प्रतिदिन परेशान करता था। रानियाँ आपस में लेटकर विलाप करती थीं, और वे एक-दूसरे का ध्यान भटकाने के लिए क्या करती थीं, अपने परदे वाले कमरों में एक-दूसरे से क्या मनोरंजन पाती थीं, इसका वर्णन यहाँ नहीं किया जा सकता। केवल काल्पनिक रानी ही पवित्र रहीं, और उन्होंने ही अकबर को उन कष्टों के बारे में बताया जो लोग अति उत्साही अधिकारियों की वजह से झेल रहे थे, ताकि वह घर पर आराम से समय बिता सकें। जैसे ही सम्राट को यह पता चला,

उन्होंने आदेश रद्द कर दिया, निर्माण मंत्री को एक कम कठोर व्यक्ति से बदल दिया, और अपने शोषित प्रजाजनों की गलियों में घूमते हुए चिल्लाए, “जितना चाहो शोर मचाओ, लोगों! शोर ही जीवन है, और अत्यधिक शोर इस बात का संकेत है कि जीवन सुखमय है। जब हम सुरक्षित रूप से मर जाएँगे, तब हम सबके लिए शांत रहने का समय होगा।” शहर खुशी के शोर से भर गया।

वह दिन ऐसा था जब यह स्पष्ट हो गया कि सिंहासन पर एक नए प्रकार का राजा विराजमान है, और दुनिया में कुछ भी पहले जैसा नहीं रहेगा।

अंततः देश में शांति स्थापित हो गई, लेकिन राजा का मन कभी शांत नहीं हुआ। राजा अभी-अभी अपने अंतिम अभियान से लौटे थे; उन्होंने सूरत में विद्रोहियों को करारा जवाब दिया था, लेकिन लंबे समय तक चले मार्च और युद्ध के दौरान उनका मन सैन्य संबंधी पहेलियों के साथ-साथ दार्शनिक और भाषाई उलझनों से भी जूझता रहा। सम्राट अबुल-फतह जलालुद्दीन मुहम्मद, राजाओं के राजा, जिन्हें बचपन से अकबर के नाम से जाना जाता था, जिसका अर्थ है "महान", और बाद में, इस शब्द की पुनरावृत्ति के बावजूद, अकबर महान, महानतम, अपनी महानता में महान, दुगुना महान, इतना महान कि उनकी उपाधि में पुनरावृत्ति न केवल उचित थी बल्कि उनकी महिमा को व्यक्त करने के लिए आवश्यक भी थी—महान मुगल, धूल से सना हुआ, युद्ध से थका हुआ, विजयी, चिंतनशील, थोड़ा मोटा, मोहभंग, मूंछों वाला, कवि, अति-कामुक और निरंकुश सम्राट, जो एक व्यक्ति होने के लिए बहुत भव्य, बहुत व्यापक और संक्षेप में, बहुत अधिक प्रतीत होता था—शासक की यह सर्वव्यापी बाढ़, दुनिया को निगलने वाला, यह कई सिरों वाला राक्षस जो स्वयं को प्रथम पुरुष बहुवचन में संदर्भित करता था—अपने लंबे, थकाऊ घर वापसी के सफर के दौरान, जिसमें उनके पराजित शत्रुओं के सिर सीलबंद मिट्टी के बर्तनों में तैरते हुए उनके साथ थे, उन्होंने अपने जीवन की भयावह संभावनाओं पर विचार करना शुरू कर दिया था। प्रथम पुरुष एकवचन—यानी "मैं"।

अकबर ने स्वयं को कभी "मैं" कहकर संबोधित नहीं किया, न ही एकांत में, न क्रोध में, न स्वप्न में। वे—और क्या हो सकते थे?—"हम" थे। वे "हम" की परिभाषा, साक्षात अवतार थे। उनका जन्म बहुलता में हुआ था। जब वे "हम" कहते थे, तो उनका स्वाभाविक और सच्चा अर्थ स्वयं से होता था, जो उनकी समस्त प्रजा, उनके समस्त नगरों, भूमियों, नदियों, पर्वतों और झीलों, साथ ही उनकी सीमाओं के भीतर के समस्त

पशु, वनस्पतियों और वृक्षों, आकाश में उड़ने वाले पक्षियों, गोधूलि बेला के तीखे मच्छरों और पाताल लोक में छिपे उन अज्ञात राक्षसों का साक्षात अवतार थे, जो धीरे-धीरे चीजों की जड़ों को कुतर रहे थे; उनका अर्थ स्वयं से था, जो उनकी समस्त विजयों का सार थे, स्वयं में उनके वध किए गए या मात्र शांत किए गए विरोधियों के चरित्र, क्षमताएं, इतिहास, शायद उनकी आत्माएं भी समाहित थीं; और इसके अतिरिक्त, उनका अर्थ स्वयं से था, जो उनकी प्रजा के अतीत और वर्तमान का शिखर और उनके भविष्य का प्रेरक था।

यह "हम" ही राजा होने का अर्थ था - लेकिन आम लोग, उसने अब निष्पक्षता के हित में और बहस के उद्देश्य से, इस बात पर विचार करने की अनुमति दी कि वे भी निस्संदेह कभी-कभी खुद को बहुवचन के रूप में सोचते होंगे।

क्या वे गलत थे? या (हे विश्वासघाती विचार!) क्या वह स्वयं गलत था? शायद स्वयं को समुदाय के रूप में देखने का यही विचार संसार में किसी भी प्राणी के होने का अर्थ था; ऐसा प्राणी, अंततः, अनिवार्य रूप से अन्य प्राणियों के बीच एक प्राणी होता है, सभी चीजों के अस्तित्व का एक हिस्सा होता है। शायद बहुलता केवल राजा का विशेषाधिकार नहीं थी, शायद यह अंततः उसका दैवीय अधिकार नहीं था। कोई यह भी तर्क दे सकता है कि, चूंकि एक सम्राट के विचार, कम उदात्त और परिष्कृत रूप में, निस्संदेह उसकी प्रजा के चिंतन में प्रतिबिंबित होते थे, इसलिए यह स्वाभाविक था कि जिन पुरुषों और महिलाओं पर वह शासन करता था, वे भी स्वयं को "हम" के रूप में देखें। उन्होंने शायद स्वयं को अपने बच्चों, माताओं, चाचियों, नियोक्ताओं, सह-उपासकों, सहकर्मियों, कुलों और मित्रों से मिलकर बनी बहुल संस्थाओं के रूप में देखा। उन्होंने भी स्वयं को अनेक रूपों में देखा, एक रूप जो उनके बच्चों का पिता था, दूसरा जो उनके माता-पिता का बच्चा था; वे जानते थे कि अपने मालिकों के साथ उनका व्यवहार घर पर अपनी पत्नियों के साथ व्यवहार से अलग होता है—संक्षेप में, वे सभी अपने-अपने स्वरूपों से भरे हुए थे, बहुलता से लबालब, ठीक उसी तरह जैसे वह था। तो क्या शासक और शासित के बीच कोई मूलभूत अंतर नहीं था? और अब उसका मूल प्रश्न एक नए और चौंकाने वाले रूप में फिर से सामने आया: यदि उसकी अनेक स्वरूपों वाली प्रजा स्वयं को बहुवचन के बजाय एकवचन में सोचने में सक्षम हो, तो क्या वह भी एक "मैं" हो सकता है? क्या कोई ऐसा "मैं" हो सकता है जो केवल स्वयं हो? क्या पृथ्वी के भीड़ भरे "हम" के नीचे ऐसे नग्न, एकाकी "मैं" दबे हुए हैं? यह

एक ऐसा प्रश्न था जो उसे डरा रहा था जब वह अपने सफेद घोड़े पर सवार होकर घर लौट रहा था, निडर, अजेय, और यह स्वीकार करना होगा कि वह थोड़ा मोटा भी हो रहा था; और जब यह रात में उसके दिमाग में आया तो उसे आसानी से नींद नहीं आई। जब वह अपनी जोधा को फिर से देखेगा तो उसे क्या कहना चाहिए? अगर वह बस इतना कह दे, "मैं वापस आ गया हूँ," या "मैं ही हूँ," तो क्या वह भी बदले में उसे उस दूसरे व्यक्ति एकवचन, उस 'तू' से पुकार पाएगी जो बच्चों, प्रेमियों और देवताओं के लिए आरक्षित था? और इसका क्या अर्थ होगा? क्या वह उसके बच्चे जैसा था, या देवता जैसा, या बस वही प्रेमी जिसका उसने भी सपना देखा था, जिसे उसने उतनी ही उत्सुकता से साकार किया था जितनी उत्सुकता से उसने उसका? क्या वह छोटा सा शब्द, वह 'तू', भाषा का सबसे उत्तेजक शब्द साबित हो सकता है? "मैं," वह मन ही मन दोहराता रहा। "मैं" यहाँ हूँ। "मैं" तुमसे प्यार करता हूँ। "मेरे" पास आओ।

घर लौटते समय एक आखिरी सैन्य मुठभेड़ ने उनके चिंतन को भंग कर दिया। एक और उद्दंड राजकुमार को सबक सिखाना था। कूच नाहीन के हठी राणा को शांत करने के लिए काठियावाड़ प्रायद्वीप में जाना पड़ा, एक ऐसा नौजवान जिसकी ज़बान बहुत चलती थी और मूंछें भी उससे बड़ी थीं (सम्राट को अपनी मूंछों पर बहुत गर्व था और वह प्रतिद्वंद्वियों को बिल्कुल पसंद नहीं करता था), एक सामंती शासक जिसे आज़ादी की बातें करने का बेतुका शौक था। किसके लिए और किससे आज़ादी, सम्राट ने मन ही मन सोचा। आज़ादी तो बच्चों की कल्पना है, औरतों का खेल है।

कोई भी व्यक्ति कभी स्वतंत्र नहीं था। उसकी सेना गिर वन के सफेद पेड़ों के बीच से एक चुपचाप आती महामारी की तरह आगे बढ़ रही थी, और कूच नाहीन का दयनीय छोटा किला, पेड़ों की सरसराहट में मृत्यु के आगमन को देखकर, अपने ही बुर्ज तोड़कर, आत्मसमर्पण का झंडा फहराकर, दया की भीख मांगने लगा। अक्सर, सम्राट अपने पराजित विरोधियों को मृत्युदंड देने के बजाय, उनकी बेटियों में से किसी एक से विवाह कर लेता और अपने पराजित ससुर को नौकरी दे देता: सड़ते हुए शव से बेहतर था परिवार का एक नया सदस्य। लेकिन इस बार, उसने चिढ़कर उस अभिमानी राणा की मूंछें उसके सुंदर चेहरे से नोच डालीं और उस कमजोर स्वप्नद्रष्टा के टुकड़े-टुकड़े कर दिए—यह काम उसने स्वयं अपनी तलवार से किया, ठीक वैसे ही जैसे उसके दादा करते, और फिर कांपते और शोक मनाते हुए अपने कमरे में लौट गया।

सम्राट की आँखें तिरछी और बड़ी थीं, मानो किसी स्वप्निल युवती या ज़मीन की तलाश में निकले नाविक की तरह अनंत की ओर टकटकी लगाए हों। उनके होंठ भरे हुए और स्त्रीत्वपूर्ण भाव से आगे की ओर निकले हुए थे। लेकिन इन स्त्रीत्वपूर्ण विशेषताओं के बावजूद, वे एक शक्तिशाली, विशाल और बलवान पुरुष थे। बचपन में उन्होंने अपने नंगे हाथों से एक बाघिन को मार डाला था और फिर अपने इस कृत्य से विक्षिप्त होकर उन्होंने मांसाहार त्याग दिया और शाकाहारी बन गए। एक मुस्लिम शाकाहारी, एक योद्धा जो केवल शांति चाहता था, एक दार्शनिक-राजा: विरोधाभासों से भरा हुआ। ऐसा था वह महानतम शासक जिसे इस धरती ने कभी जाना था।
युद्ध के बाद की उदासी में, जब शाम खाली लाशों पर छा गई, टूटे हुए किले के नीचे जो खून में लथपथ था, एक छोटे झरने के बुलबुल के मधुर गीत की गूंज के बीच—बुल-बुल, बुल-बुल, वह गा रही थी—सम्राट अपने रेशमी तंबू में पानी मिला हुआ मदिरा पी रहे थे और अपने खूनी वंश पर विलाप कर रहे थे। वह अपने रक्तपिपासु पूर्वजों की तरह नहीं बनना चाहते थे, भले ही उनके पूर्वज इतिहास के महानतम पुरुष थे। वह अतीत के लुटेरों के नामों से बोझिल महसूस कर रहे थे, वे नाम जिनसे उनका नाम मानव रक्त की धाराओं में बह निकला था: उनके दादा बाबर, फरगाना के योद्धा, जिन्होंने इस नए राज्य, इस अत्यधिक धन और अत्यधिक देवताओं वाले भारत को जीत लिया था, लेकिन हमेशा इससे घृणा करते रहे, बाबर, युद्ध की मशीन, मधुर शब्दों के लिए एक अप्रत्याशित प्रतिभा के साथ; बाबर से पहले ट्रांसोक्सियाना और मंगोलिया के खूनी राजकुमार, और सबसे बढ़कर शक्तिशाली तेमुजिन—चंगेज़, चंगेज़, चंगेज़ या चिंगगिस खान—जिनकी बदौलत अकबर को मुगल नाम स्वीकार करना पड़ा, उसे मंगोल बनना पड़ा जो वह नहीं था, या खुद को नहीं मानता था। वह खुद को... हिंदुस्तानी मानता था। उसकी सेना न तो सुनहरी थी, न नीली, न सफेद। "सेना" शब्द ही उसके कोमल कानों को बदसूरत, घिनौना और भद्दा लगता था। वह सेना नहीं चाहता था। वह अपने पराजित शत्रुओं की आँखों में पिघला हुआ चाँदी नहीं डालना चाहता था या उन्हें उस चबूतरे के नीचे कुचल कर मारना नहीं चाहता था जिस पर वह अपना भोजन कर रहा था। वह युद्ध से थक चुका था।
उन्हें अपने बचपन के शिक्षक, एक फ़ारसी मीर की बात याद आई, जिन्होंने उनसे कहा था कि किसी व्यक्ति को स्वयं से संतुष्ट रहने के लिए सभी दूसरों से संतुष्ट रहना

चाहिए। सुलह-ए-कुल, पूर्ण शांति। कोई भी खान इस विचार को समझ नहीं सकता था। उन्हें खानत नहीं चाहिए थी। उन्हें एक देश चाहिए था।

कूच नाहीन के राणा, जो युवा, दुबले-पतले और सांवले थे, अकबर के चरणों में घुटने टेककर बैठ गए थे। उनका चेहरा मुँधा हुआ और खून से लथपथ था, वे प्रहार की प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने कहा, "इतिहास खुद को दोहराता है। तुम्हारे दादा ने सत्तर साल पहले मेरे दादा को मारा था।"

"हमारे दादाजी," सम्राट ने रीति के अनुसार शाही बहुवचन का प्रयोग करते हुए उत्तर दिया, क्योंकि यह एकवचन के प्रयोग का समय नहीं था—यह अभागा इसे देखने के योग्य नहीं था—"एक कवि की वाणी वाला बर्बर थे। इसके विपरीत, हम एक बर्बर इतिहास और बर्बर युद्ध कौशल वाले कवि हैं, जिनसे हमें घृणा है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि इतिहास स्वयं को दोहराता नहीं बल्कि आगे बढ़ता है, और मनुष्य परिवर्तन में सक्षम है।"

"जल्लाद के लिए ऐसी बात कहना अजीब है," युवा राणा ने धीरे से कहा। "लेकिन मौत से बहस करना व्यर्थ है।"

"तुम्हारा समय आ गया है," सम्राट ने सहमति जताई। "तो जाने से पहले हमें सच-सच बताओ, परदे के पार जाने पर तुम्हें किस प्रकार का स्वर्ग मिलेगा?" राणा ने अपना क्षत-विक्षत चेहरा उठाया और सम्राट की आँखों में देखा। "स्वर्ग में 'पूजा' और 'तर्क' का एक ही अर्थ होता है," उसने घोषणा की। "सर्वशक्तिमान अत्याचारी नहीं है। ईश्वर के घर में सभी को अपनी इच्छानुसार बोलने की स्वतंत्रता है, और यही उनकी भक्ति का रूप है।" वह एक चिड़चिड़ा, घमंडी किस्म का युवक था, इसमें कोई संदेह नहीं था, लेकिन उसकी झुंझलाहट के बावजूद अकबर प्रभावित हुए। "हम आपसे वादा करते हैं कि हम पृथ्वी पर ही आराधना का वह घर बनाएंगे," सम्राट ने कहा। फिर, "अल्लाहू अकबर" या शायद "अकबर ईश्वर है" का नारा लगाते हुए, उन्होंने उस अभिमानी, उपदेशात्मक और इसलिए अचानक अनावश्यक हो चुके युवक का सिर काट डाला।

राणा की हत्या करने के बाद के घंटों में, सम्राट अपने परिचित एकांत के राक्षस से घिर गया। जब भी कोई व्यक्ति उससे बराबरी का व्यवहार करता, तो वह पागल हो जाता, और यह उसकी एक खामी थी, वह यह समझता था। एक राजा का क्रोध हमेशा एक खामी होता है; एक क्रोधित राजा उस देवता के समान होता है जो गलतियाँ करता है।

और यही उसमें एक और विरोधाभास था। वह न केवल एक बर्बर दार्शनिक और भावुक हत्यारा था, बल्कि एक अहंकारी भी था जो चापलूसी और खुशामद का आदी था, फिर भी एक अलग दुनिया की कामना करता था, एक ऐसी दुनिया जिसमें उसे ठीक वही व्यक्ति मिल सके जो उसके बराबर हो, जिससे वह अपने भाई की तरह मिल सके, जिसके साथ वह खुलकर बात कर सके, सिखा सके और सीख सके, सुख दे सके और ले सके, एक ऐसी दुनिया जिसमें वह विजय के घमंड भरे सुखों को छोड़कर संवाद के कोमल लेकिन अधिक कठिन आनंदों को अपना सके। क्या ऐसी दुनिया का अस्तित्व था? वहाँ तक कैसे पहुँचा जा सकता था? क्या दुनिया में कहीं ऐसा कोई व्यक्ति था, या उसने उसे मार डाला था? क्या होगा अगर मूंछों वाला राणा अकेला ही ऐसा व्यक्ति था? क्या उसने धरती पर उस इकलौते इंसान को मार डाला था जिससे वह शायद प्यार करता था? सम्राट के विचार शराब से भरे और भावुक हो गए, उसकी आँखें नशे के आँसुओं से धुंधली हो गईं। वह वह इंसान कैसे बन सकता था जो वह बनना चाहता था? अकबर, महान व्यक्ति? कैसे?

वहाँ बात करने वाला कोई नहीं था। उसने अपने बहरे अंगरक्षक भक्ति राम जैन को तम्बू से बाहर जाने का आदेश दिया था, ताकि वह शांति से पी सके। एक अंगरक्षक जो अपने स्वामी की बड़बड़ाहट न सुन सके, वरदान था, लेकिन भक्ति राम जैन अब उसके होंठ पढ़ना सीख गया था, जिससे उसका महत्व काफी कम हो गया था और वह भी दूसरों की तरह छुपकर बातें सुनने वाला बन गया था। राजा पागल है। सब यही कहते थे: हर कोई यही कहता था। उसके सैनिक, उसकी प्रजा, उसकी पत्नियाँ। शायद भक्ति राम जैन ने भी यही कहा होगा। उन्होंने उसके सामने ऐसा नहीं कहा, क्योंकि वह एक विशालकाय व्यक्ति और एक शक्तिशाली योद्धा था, प्राचीन कथाओं के नायक की तरह, और वह राजाओं का राजा भी था, और अगर ऐसा व्यक्ति थोड़ा सनकी होना चाहता था तो उसे रोकने वाले कौन होते थे? हालाँकि, राजा पागल नहीं था। राजा अपने अस्तित्व से संतुष्ट नहीं था। वह कुछ बनने का प्रयास कर रहा था।

बहुत खूब। वह मृत काठियावाड़ी राजकुमार से किया अपना वादा निभाएगा। अपनी विजय नगरी के केंद्र में वह एक आराधनालय बनवाएगा, एक ऐसा विमर्श स्थल जहाँ किसी भी विषय पर, किसी से भी, हर बात कही जा सके, जिसमें ईश्वर का अस्तित्व न होना और राजाओं का उन्मूलन भी शामिल है। वह उस गृह में स्वयं को विनम्रता सिखाएगा। नहीं, अब वह अपने साथ अन्याय कर रहा है। "सिखाना" नहीं। बल्कि, वह

अपने हृदय में गहराई से बसी विनम्रता को याद दिलाएगा और पुनः प्राप्त करेगा। यह विनम्र अकबर शायद उसका सर्वश्रेष्ठ रूप था, जो उसके निर्वासन में बीते बचपन की परिस्थितियों से निर्मित था, अब वयस्क वैभव में लिपटा हुआ था, लेकिन फिर भी मौजूद था; एक ऐसा रूप जो विजय में नहीं, पर पराजय में जन्मा था। आजकल तो सब कुछ विजय ही विजय थी, लेकिन सम्राट पराजय का भी भला जानता था। पराजय उसका पिता था। उसका नाम हुमायूँ था।

उन्हें अपने पिता के बारे में सोचना अच्छा नहीं लगता था। उनके पिता ने अत्यधिक अफीम का सेवन किया था, अपना साम्राज्य खो दिया था, और उसे तभी वापस पाया जब उन्होंने शिया होने का नाटक किया (और कोह-ए-नूर हीरा दान कर दिया) ताकि फारस का बादशाह उन्हें युद्ध के लिए सेना दे दे, और सिंहासन पुनः प्राप्त करने के तुरंत बाद पुस्तकालय की सीढ़ियों से गिरकर उनकी मृत्यु हो गई। अकबर अपने पिता को नहीं जानते थे। उनका जन्म सिंध में हुआ था, चौसा में हुमायूँ की हार के बाद, और फिर वे अपने बेटे को छोड़कर फारस भाग गए थे। उनका चौदह महीने का बेटा... जिसे उनके पिता के भाई और शत्रु, कंधार के चाचा असकारी ने पाया और पाला-पोसा, वह क्रूर चाचा असकारी, जो अकबर के करीब आ पाते तो खुद उन्हें मार डालते, लेकिन वे ऐसा नहीं कर पाए, क्योंकि उनकी पत्नी हमेशा आड़े आती थी।

अकबर इसलिए जीवित रहा क्योंकि उसकी चाची चाहती थी। कंधार में उसे जीवन रक्षा, लड़ाई, शिकार और मार-काट का ज्ञान मिला, और उसने बिना सिखाए ही बहुत कुछ सीखा, जैसे कि अपनी रक्षा कैसे करनी है, अपनी ज़बान पर लगाम कैसे रखनी है और ऐसी कोई बात न बोलना जिससे उसकी जान को खतरा हो। उसने खोए हुए व्यक्ति की गरिमा, हार का सामना करने का ज्ञान, और यह कि कैसे हार स्वीकार करने से आत्मा शुद्ध होती है, और कैसे त्यागने का ज्ञान, अपनी इच्छाओं से अत्यधिक चिपके रहने के जाल से बचने का ज्ञान, और सामान्य रूप से परित्याग का ज्ञान, और विशेष रूप से पितविहीनता का ज्ञान, पिताओं की कमी का ज्ञान, पितविहीन लोगों की कमी का ज्ञान, और उन लोगों के लिए सबसे अच्छे बचाव जो कमज़ोर हैं: अंतर्मुखता, दूरदर्शिता, चतुराई, विनम्रता और दूरदृष्टि। कमी के अनेक सबक। वह कमी जिससे विकास की शुरुआत हो सकती है।

लेकिन कुछ ऐसी बातें भी थीं जो किसी ने उन्हें सिखाने की नहीं सोची थीं, और जो वह कभी नहीं सीख पाएंगे। "हम भारत के सम्राट भक्ति राम जैन हैं, लेकिन हम अपना

नाम भी नहीं लिख सकते!" उन्होंने भोर में अपने अंगरक्षक पर चिल्लाते हुए कहा, जब वह बूढ़ा व्यक्ति स्नान करने में उनकी मदद कर रहा था।
“जी हां, हे परम पूजनीय, अनेक पुत्रों के पिता, अनेक पत्नियों के पति, जगत के सम्राट, पृथ्वी के स्वामी,” भक्ति राम जैन ने उन्हें तौलिया देते हुए कहा। इस बार, राजा के दरबार का समय, शाही चापलूसी का भी समय था। भक्ति राम जैन गर्व से प्रथम श्रेणी के शाही चापलूस का पद धारण करते थे और चापलूसी की अलंकृत, पुरानी शैली में निपुण थे। अति-प्रशंसाओं के जटिल शब्दों को याद रखने वाला व्यक्ति ही इस तरह से चापलूसी कर सकता था, क्योंकि इसमें दोहराव और क्रम की सटीकता आवश्यक होती है। भक्ति राम जैन की स्मृति अचूक थी। वे घंटों तक चापलूसी कर सकते थे।
सम्राट ने गर्म पानी के पात्र में से अपना ही चेहरा गुस्से से घूरता हुआ देखा, मानो किसी विनाश का संकेत हो। “हम राजाओं के राजा हैं, भक्ति राम जैन, लेकिन हम अपने ही कानून नहीं पढ़ सकते। इस बारे में आपका क्या कहना है?”
“जी हां, हे न्यायप्रिय न्यायाधीशों में श्रेष्ठ, अनेक पुत्रों के पिता, अनेक पत्नियों के पति, जगत के सम्राट, पृथ्वी को समाहित करने वाले, समस्त सत्ता के शासक, समस्त प्राणियों को एकत्रित करने वाले,” भक्ति राम जैन ने अपने कार्य के प्रति उत्साह दिखाते हुए कहा।
“हम परम प्रकाश हैं, भारत के सितारे हैं और गौरव के सूर्य हैं,” सम्राट ने कहा, जो स्वयं चापलूसी में माहिर थे। “फिर भी हम उस गंदे कस्बे में पले-बढ़े हैं जहाँ पुरुष स्त्रियों के साथ यौन संबंध बनाकर बच्चे पैदा करते हैं, लेकिन लड़कों को मर्द बनाने के लिए उनके साथ यौन संबंध बनाते हैं—हमें पीछे से हमला करने वाले और सामने से लड़ने वाले योद्धा दोनों से सावधान रहना सिखाया गया।”
“जी हां, हे तेजस्वी प्रकाश, अनेक पुत्रों के पिता, अनेक पत्नियों के पति, जगत के सम्राट, पृथ्वी को समाहित करने वाले, समस्त सत्ता के शासक, समस्त प्राणियों को जोड़ने वाले, परम तेजस्वी, भारत के सितारे और गौरव के सूर्य,” भक्ति राम जैन ने कहा, जो शायद बहरे थे लेकिन इशारे को समझना जानते थे।
“क्या इसी तरह से किसी राजा का पालन-पोषण होना चाहिए, भक्ति राम जैन?” सम्राट क्रोधित होकर गरज उठा और उसने गुस्से में कुंड उलट दिया। “अनपढ़, गधों की रखवाली करने वाला, बर्बर—क्या यही एक राजकुमार का स्वभाव होना चाहिए?”

“जी हां, हे ज्ञानियों से भी अधिक ज्ञानी, अनेक पुत्रों के पिता, अनेक पत्नियों के पति, जगत के सम्राट, पृथ्वी को समाहित करने वाले, समस्त सत्ता के स्वामी, समस्त प्राणियों को जोड़ने वाले, परम तेजस्वी, भारत के सितारे, गौरव के सूर्य, मानव आत्माओं के स्वामी, अपने लोगों के भाग्य के निर्माता,” भक्ति राम जैन ने कहा।
“तुम ऐसा दिखावा कर रहे हो जैसे तुम हमारे होंठों पर लिखे शब्द नहीं पढ़ सकते!” सम्राट चिल्लाया।
“हाँ, हे द्रष्टाओं से भी अधिक अंतर्दृष्टिवान, अनेकों के पिता—”
"तुम एक बकरी हो जिसका गला काट देना चाहिए ताकि हम उसका मांस दोपहर के भोजन में खा सकें।"
“जी हां, हे देवताओं से भी अधिक दयालु, पिता—”
"तुम्हें जन्म देने के लिए तुम्हारी माँ ने एक सूअर के साथ यौन संबंध बनाया था।"
“हाँ, हे सबसे वाक्पटु, भाड़ में जाओ—”
“कोई बात नहीं,” सम्राट ने कहा। “अब हम बेहतर महसूस कर रहे हैं। चले जाओ। तुम जी सकते हो।”
और यहाँ फिर से, लाल महल की खिड़कियों से झंडों की तरह लहराते चमकीले रेशमी वस्त्रों के साथ, सिकरी अफीम के नशे में धुत्त होकर चमक रहा था। अंततः, अपने इतराते मोरों और नाचती युवतियों के साथ, यही उसका घर था। यदि युद्धग्रस्त दुनिया एक कठोर सत्य थी, तो सिकरी एक सुंदर झूठ था। सम्राट ऐसे घर लौटे जैसे कोई धूम्रपान करने वाला अपनी पाइप पर लौटता है। वे जादूगर थे। इस स्थान पर वे एक नई दुनिया का निर्माण करते, एक ऐसी दुनिया जो धर्म, क्षेत्र, पद और जाति से परे थी। दुनिया की सबसे सुंदर स्त्रियाँ यहाँ थीं, और वे सभी उनकी पत्नियाँ थीं। देश की सबसे प्रतिभाशाली हस्तियाँ यहाँ एकत्रित थीं, जिनमें नौ रत्न भी शामिल थे, जो नौ सबसे प्रतिभाशाली थे, और उनकी सहायता से ऐसा कुछ भी नहीं था जो वे हासिल न कर सकें। और फिर थे बीरबल, नौ रत्नों में सर्वश्रेष्ठ, जो सर्वश्रेष्ठ में सर्वश्रेष्ठ थे। उनके प्रथम मंत्री और प्रथम मित्र। युग के प्रथम मंत्री और सबसे बुद्धिमान ने हाथियों के दांतों के शिखर, हिरन मीनार पर उनका स्वागत किया। सम्राट की शरारत की भावना जागृत हो उठी। “बीरबल,” अकबर ने घोड़े से उतरते हुए कहा, “क्या आप मेरे एक प्रश्न का उत्तर देंगे? हम इसे पूछने के लिए बहुत समय से प्रतीक्षा कर रहे हैं।” अपनी असाधारण बुद्धि और बुद्धिमत्ता के लिए प्रसिद्ध प्रथम मंत्री ने विनम्रतापूर्वक सिर

झुकाया। “जैसा आप चाहें, जहाँपनाह, संसार के आश्रयदाता।” “तो फिर,” अकबर ने कहा, “पहले मुर्गी आई या अंडा?” बीरबल ने तुरंत उत्तर दिया, “मुर्गी।” अकबर अचंभित रह गए। “आपको इतना यकीन कैसे है?” उन्होंने जानना चाहा। “हुज़ूर,” बीरबल ने उत्तर दिया, “मैंने केवल एक प्रश्न का उत्तर देने का वादा किया है।”

प्रथम मंत्री और सम्राट शहर की प्राचीर पर खड़े होकर उड़ते हुए कौवों को देख रहे थे। अकबर ने सोचा, “बीरबल, मेरे राज्य में कितने कौवे होंगे, आप क्या अनुमान लगाते हैं?” बीरबल ने उत्तर दिया, “जहाँपनाह में ठीक नौ लाख निन्यानवे हज़ार नौ सौ निन्यानवे कौवे हैं।” अकबर अचंभित हो गए। उन्होंने कहा, “मान लीजिए कि हम उनकी गिनती कर लें और वे इससे अधिक हों, तो क्या होगा?” बीरबल ने उत्तर दिया, “इसका अर्थ यह होगा कि उनके पड़ोसी राज्य के मित्र उनसे मिलने आए हैं।” “और यदि कम हों तो?” बीरबल ने उत्तर दिया, “तो हमारे कुछ कौवे दुनिया देखने के लिए विदेश गए होंगे।”

अकबर के दरबार में एक महान भाषाविद्, एक दूर पश्चिमी देश से आए अतिथि, उपस्थित थे: एक जेसुइट पादरी जो दर्जनों भाषाओं में धाराप्रवाह बातचीत और बहस कर सकते थे। उन्होंने सम्राट को उनकी मातृभाषा खोजने की चुनौती दी। जब सम्राट इस पहेली पर विचार कर रहे थे, तभी उनके प्रथम मंत्री ने पादरी के चारों ओर चक्कर लगाया और अचानक उन्हें पीछे से ज़ोरदार लात मारी। पादरी ने पुर्तगाली में नहीं, बल्कि इतालवी में अपशब्दों की बौछार कर दी। बीरबल ने कहा, “देखो, जहाँपनाह, जब किसी को अपमानित करने का समय आता है, तो व्यक्ति हमेशा अपनी मातृभाषा को ही चुनता है।”

“बीरबल, अगर तुम नास्तिक होते,” सम्राट ने अपने प्रथम मंत्री को चुनौती देते हुए कहा, “तो तुम दुनिया के सभी महान धर्मों के सच्चे विश्वासियों से क्या कहते?” बीरबल त्रिविक्रमपुर के एक धर्मनिष्ठ ब्राह्मण थे, लेकिन उन्होंने बिना किसी झिझक के उत्तर दिया, “मैं उनसे कहता कि मेरी राय में वे सभी भी नास्तिक हैं; मैं बस उनसे एक कम ईश्वर में विश्वास करता हूँ।” “ऐसा कैसे?” सम्राट ने पूछा। बीरबल ने कहा, “सभी सच्चे विश्वासियों के पास अपने ईश्वर को छोड़कर बाकी सभी ईश्वरों में अविश्वास करने के अच्छे कारण हैं। और इसलिए वे ही मुझे किसी भी ईश्वर में विश्वास न करने के सभी कारण देते हैं।”

प्रथम मंत्री और सम्राट ख्वाबगाह, सपनों के स्थान पर खड़े थे, और अनुप तालाब की शांत सतह को निहार रहे थे, जो सम्राट का निजी, औपचारिक तालाब था, अद्वितीय तालाब, सभी तालाबों में सर्वश्रेष्ठ, जिसके बारे में कहा जाता था कि जब राज्य संकट में होता था तो उसका पानी चेतावनी भेजता था। अकबर ने कहा, "बीरबल, जैसा कि आप जानते हैं, हमारी प्रिय रानी का दुर्भाग्य है कि वह अब इस दुनिया में नहीं हैं। यद्यपि हम उन्हें सबसे अधिक प्यार करते हैं, सभी से ऊपर उनकी प्रशंसा करते हैं, और उन्हें खोई हुई कोह-ए-नूर से भी अधिक महत्व देते हैं, फिर भी वह बहुत दुखी हैं। वह कहती हैं, 'आपकी सबसे बदसूरत, सबसे चिड़चिड़ी और झगड़ालू पत्नी भी अभी तक जीवित है। अंत में, मैं उससे प्रतिस्पर्धा नहीं कर पाऊंगी।'"

प्रथम मंत्री ने सम्राट को सलाह दी, "जहानपनाह, आपको उससे कहना चाहिए कि अंत में ही उसकी जीत सबके सामने स्पष्ट होगी, क्योंकि अंत में उसके बाद कोई भी रानी अस्तित्व में नहीं रहेगी, जबकि वह आपके प्रेम का जीवन भर आनंद ले चुकी होगी और उसकी प्रसिद्धि युगों-युगों तक गूंजेगी। अतः, वास्तव में, यद्यपि यह सत्य है कि वह अस्तित्व में नहीं है, यह कहना भी सत्य है कि वही जीवित है। यदि वह जीवित न होती, तो उस ऊँची खिड़की के पीछे, आपके लौटने की प्रतीक्षा करने वाला कोई न होता।"

जोधा की बहनें, उसकी सहेलियाँ, उससे नाराज़ थीं। शक्तिशाली सम्राट भला एक ऐसी स्त्री की संगति कैसे पसंद कर सकता है जिसका कोई अस्तित्व ही न हो? कम से कम उसके जाने के बाद तो उसे भी वहाँ से चले जाना चाहिए था; उसे किसी वास्तविक अस्तित्व के साथ रहने का कोई अधिकार नहीं था। उसे एक प्रेत की तरह गायब हो जाना चाहिए था, किसी दर्पण या परछाई में समा जाना चाहिए था और गुम हो जाना चाहिए था। जीवित रानियों ने निष्कर्ष निकाला कि उसका ऐसा न करना एक काल्पनिक प्राणी से अपेक्षित ही मूर्खता थी। जब उसका पालन-पोषण हुआ ही नहीं, तो उसे शिष्टाचार कैसे सिखाया जा सकता था? वह एक अनपढ़ काल्पनिक पात्र थी, और उसे नज़रअंदाज़ किया जाना ही उचित था।

सम्राट ने उन सभी के अंश चुराकर उसे गढ़ा था, वे क्रोधित थे। उसने कहा कि वह जोधपुर के राजकुमार की पुत्री थी। वह नहीं थी! वह कोई और रानी थी, और वह पुत्री नहीं बल्कि बहन थी। सम्राट यह भी मानता था कि उसकी काल्पनिक प्रेमिका उसके पहले पुत्र की माता थी, उसके बहुप्रतीक्षित पहले पुत्र की, जो एक संत के आशीर्वाद से

गर्भ में आया था, उसी संत की पहाड़ी पर बनी कुटिया के पास यह विजय नगर बनाया गया था। लेकिन वह राजकुमार सलीम की माता नहीं थी, जैसा कि राजकुमार सलीम की असली माता, राजकुमारी हीरा कुंवारी, जिन्हें मरियम-उज़-ज़मानी के नाम से जाना जाता था, जो आमेर के राजा बिहार मल की पुत्री और कछवाहा वंश की थीं, बड़े दुख से हर किसी को बताती थीं। तो: काल्पनिक रानी की असीम सुंदरता एक पत्नी से, उसका हिंदू धर्म दूसरी से और उसका अथाह धन तीसरी से आया था। हालांकि, उसका स्वभाव अकबर की अपनी रचना थी। कोई भी वास्तविक स्त्री कभी ऐसी नहीं होती, इतनी ध्यान देने वाली, इतनी सरल, इतनी तत्पर।

वह एक असंभव सी बात थी, पूर्णता की एक कल्पना मात्र। वे उससे डरते थे, यह जानते हुए कि असंभव होने के कारण वह अप्रतिरोध्य थी, और यही कारण था कि राजा उसे सबसे अधिक प्यार करते थे। वे उससे इसलिए नफरत करते थे क्योंकि उसने उनके इतिहास को चुराया था। अगर वे उसे मार सकते तो मार ही देते, लेकिन जब तक सम्राट उससे ऊब न जाए या स्वयं मर न जाए, वह अमर थी। सम्राट की मृत्यु का विचार उनके मन में था, लेकिन अब तक रानियाँ इस पर विचार नहीं कर रही थीं। अब तक वे चुपचाप अपने दुख सह रही थीं। "सम्राट पागल है," वे मन ही मन बड़बड़ाती थीं, लेकिन समझदारी से ये शब्द बोलने से बचती थीं। और जब वह लोगों को मारते हुए इधर-उधर घूम रहा था, तो उन्होंने उस काल्पनिक रानी को उसके हाल पर छोड़ दिया। उन्होंने कभी उसका नाम नहीं लिया। जोधा, जोधाबाई... वह महल के कमरों में अकेली घूमती थी। वह जालीदार पत्थर की स्क्रीन से झाँकती एक अकेली परछाई थी। वह हवा में उड़ता हुआ कपड़ा थी। रात में वह पंच महल की सबसे ऊपरी मंजिल पर बने छोटे गुंबद के नीचे खड़ी होकर क्षितिज पर उस राजा के लौटने की प्रतीक्षा करती थी, जिसने उसे वास्तविकता प्रदान की थी।

जोधा जानती थी कि उसके महान पति के खून में जादू-टोना जरूर रहा होगा। चंगेज खान के जादू-टोने, पशु बलि और तांत्रिक जड़ी-बूटियों के इस्तेमाल के बारे में तो सभी ने सुना ही था, और यह भी कि कैसे उसने काले जादू के बलि से आठ लाख संतानें पैदा की थीं।

सभी ने वह कहानी सुनी थी कि लंगड़े तैमूर ने पृथ्वी को जीतने के बाद आकाश तक पहुँचने और उसे भी जीतने की कोशिश की थी। सभी को यह कहानी भी पता थी कि सम्राट बाबर ने मरते हुए हुमायूँ की जान कैसे बचाई थी। उन्होंने उसके बिस्तर के

चारों ओर चक्कर लगाकर मृत्यु को उसके पिता की ओर आकर्षित किया और स्वयं का बलिदान देकर अपने बेटे को जीवित रखा। मृत्यु और शैतान के साथ ये काले समझौते उसके पति की विरासत थे, और उसका स्वयं का अस्तित्व उसके भीतर की जादूई शक्ति का प्रमाण था।

सपने से वास्तविक जीवन की रचना करना एक अलौकिक कार्य था, जो देवताओं के विशेषाधिकार का हनन था। उन दिनों सिकरी कवियों और कलाकारों से भरा पड़ा था, वे अभिमानी अहंकारी जो भाषा और बिम्ब की शक्ति का दावा करते थे कि वे शून्य से सुंदर रचनाएँ रच सकते हैं, फिर भी न तो कवि, न चित्रकार, न संगीतकार, न मूर्तिकार सम्राट, जो पूर्ण पुरुष थे, की उपलब्धि के करीब भी पहुँच पाए थे। दरबार भी विदेशियों से भरा हुआ था, सजे-धजे विदेशी, मौसम की मार झेल चुके व्यापारी, पश्चिम से आए संकरे चेहरे वाले पुजारी, जो अपनी कुरूप, अप्रिय भाषा में अपने देश, अपने देवताओं, अपने राजाओं की महिमा का बखान करते थे। जब सम्राट ने उन्हें अपने साथ लाए पहाड़ों और घाटियों के चित्र दिखाए, तो उन्होंने हिमालय और कश्मीर के बारे में सोचा और विदेशियों द्वारा प्राकृतिक सौंदर्य के तुच्छ वर्णन, उनके वाल और आल्प्स, आधे-अधूरे शब्दों से आधी-अधूरी चीजों का वर्णन करने पर हँस पड़ीं। उनके राजा बर्बर थे, और उन्होंने अपने देवता को पेड़ पर कीलों से ठोक दिया था। वह ऐसे बेवकूफ लोगों से क्या चाहती थी?

वे किस चीज़ की तलाश में आए थे? किसी काम की चीज़ की नहीं। अगर उनमें थोड़ी भी समझ होती, तो उनकी यात्रा का निरर्थक होना उन्हें स्पष्ट हो जाता। यात्रा व्यर्थ थी। यह आपको उस जगह से दूर ले जाती है जहाँ आपका जीवन अर्थपूर्ण था, और जिसे आपने अपना जीवन समर्पित करके अर्थपूर्ण बनाया था, और आपको परियों की दुनिया में ले जाती है जहाँ आप बिल्कुल बेतुके लगते हैं।

हाँ: यह जगह, सिकरी, उनके लिए किसी परीलोक जैसी थी, ठीक वैसे ही जैसे उनका इंग्लैंड और पुर्तगाल, उनका हॉलैंड और फ्रांस, उसकी समझ से परे थे। दुनिया एक जैसी नहीं थी। "हम उनके सपने हैं," उसने सम्राट से कहा था। "और वे हमारे।" वह उससे प्यार करती थी क्योंकि उसने कभी उसकी राय को खारिज नहीं किया, कभी अपने हाथ के बल पर उसे ठुकराया नहीं। "लेकिन कल्पना करो, जोधा, अगर हम दूसरे पुरुषों के सपनों में जाग सकें और उन्हें बदल सकें, और अगर हममें उन्हें अपने सपनों में आमंत्रित करने का साहस हो," उसने उससे एक शाम ताश खेलते हुए कहा।

"क्या होगा अगर पूरी दुनिया एक ही जागते हुए सपने में बदल जाए?" जब वह जागते हुए सपनों की बात करता था तो वह उसे कल्पनावादी नहीं कह सकती थी, आखिर वह खुद थी क्या?

वह उन महलों को कभी नहीं छोड़ी थी जिनमें उसका जन्म दस साल पहले हुआ था, एक वयस्क के रूप में, उस व्यक्ति के यहाँ जो न केवल उसका निर्माता था बल्कि उसका प्रेमी भी था। यह सच था: वह उसकी पत्नी और उसकी संतान दोनों थी। अगर वह महलों को छोड़ देती, या कम से कम उसे हमेशा से यही संदेह था, तो जादू टूट जाएगा और उसका अस्तित्व समाप्त हो जाएगा। शायद वह ऐसा कर पाती अगर सम्राट, अपने विश्वास की शक्ति से उसे सहारा देते, लेकिन अगर वह अकेली होती तो उसके पास कोई मौका नहीं होता। सौभाग्य से, उसे जाने की कोई इच्छा नहीं थी। महल परिसर की विभिन्न इमारतों को जोड़ने वाले दीवारों और पर्दों से घिरे गलियारों के भूलभुलैया ने उसे यात्रा के सभी आवश्यक अवसर प्रदान किए। यह उसका छोटा सा ब्रह्मांड था। उसे कहीं और जाने में विजेता जैसी रुचि नहीं थी। बाकी दुनिया दूसरों के लिए है। पत्थर से बना यह मजबूत चौक उसका था।

वह एक ऐसी स्त्री थी जिसका कोई अतीत नहीं था, इतिहास से अलग थी, या यूँ कहें कि उसके पास केवल वही इतिहास था जो ईश्वर ने उसे दिया था, और जिसका अन्य रानियों ने कड़ा विरोध किया था। उसके स्वतंत्र अस्तित्व का प्रश्न, कि क्या उसका कोई अस्तित्व है, बार-बार पूछा जाता था, चाहे वह चाहती हो या न चाहती हो। यदि ईश्वर अपनी रचना, मनुष्य से मुँह मोड़ ले, तो क्या मनुष्य का अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा? यह सवाल का व्यापक पहलू था, लेकिन असल में उसे इसके स्वार्थी, छोटे पहलू परेशान कर रहे थे। क्या उसकी इच्छा उस पुरुष से मुक्त थी जिसने उसे जन्म दिया था? क्या उसका अस्तित्व केवल इसलिए था क्योंकि उसने उसके अस्तित्व की संभावना पर अविश्वास को निलंबित कर दिया था? अगर वह मर गया, तो क्या वह जी पाएगी?

उसकी नब्ज़ तेज़ हो गई। कुछ होने वाला था। उसने खुद को मज़बूत और स्थिर महसूस किया। सारे संदेह दूर हो गए। वह आ रहा था।

सम्राट महल परिसर में प्रवेश कर चुके थे, और वह उनकी बढ़ती आवश्यकता की शक्ति को महसूस कर सकती थी। हाँ। कुछ होने ही वाला था। उसने अपने रक्त में उनके कदमों की आहट महसूस की, उन्हें अपने भीतर देख सकती थी, जैसे-जैसे वे

उसकी ओर बढ़ते गए, वे और बड़े होते गए। वह उनकी परछाई थी, क्योंकि उन्होंने ही उसे बनाया था, लेकिन वह स्वयं भी थी। हाँ। अब जब सृजन की प्रक्रिया पूरी हो चुकी थी, वह उस व्यक्ति के रूप में स्वतंत्र थी जिसे उन्होंने बनाया था, स्वतंत्र, जैसे हर कोई होता है, अपनी प्रकृति के दायरे में रहकर। वह अचानक कितनी शक्तिशाली हो गई थी, रक्त और क्रोध से कितनी भरी हुई थी। उस पर उनका अधिकार पूर्ण नहीं था। उसे बस सचेत रहना था। उसने पहले कभी इतना सचेत महसूस नहीं किया था। उसकी प्रकृति बाढ़ की तरह उसमें समा गई। वह अधीन नहीं थी। उन्हें अधीन स्त्रियाँ पसंद नहीं थीं।

वह पहले उसे डांटती। वह इतने लंबे समय तक दूर कैसे रह सकता था? उसकी अनुपस्थिति में, उसे कई षड्यंत्रों का सामना करना पड़ा था। यहाँ सब कुछ अविश्वसनीय था। दीवारों में भी कानाफूसी भरी हुई थी। उसने उन सभी का मुकाबला किया और उसके लौटने के दिन तक महल को सुरक्षित रखा, घरेलू कर्मचारियों के छोटे-छोटे स्वार्थी षड्यंत्रों को विफल किया, दीवारों पर लटके जासूसों को चकमा दिया, और षड्यंत्र रचने वाले चूहों की भागदौड़ को शांत किया। इस सब के दौरान वह स्वयं को कमजोर महसूस कर रही थी, जबकि जीवित रहने के लिए भी उसे अपनी इच्छाशक्ति की लगभग पूरी ताकत लगानी पड़ रही थी। दूसरी रानियाँ... नहीं, वह दूसरी रानियों का जिक्र नहीं करेगी। दूसरी रानियाँ अस्तित्व में नहीं थीं। केवल वही अस्तित्व में थी। वह भी एक जादूगरनी थी। वह स्वयं की जादूगरनी थी।

उसे केवल एक ही पुरुष को मोहित करना था, और वह यहीं था। वह अन्य रानियों के पास नहीं जा रहा था। वह उसी के पास आ रहा था जो उसे प्रसन्न करता था। वह उसके लिए, उसके प्रेम के लिए, और जो कुछ होने वाला था, उसके लिए तड़प रही थी। वह उसकी ज़रूरत को भली-भांति जानती थी। वह सब कुछ जानती थी।

दरवाजा खुला। वह अस्तित्व में थी। वह अमर थी, क्योंकि उसकी रचना प्रेम से हुई थी।

उन्होंने सुनहरे मुकुट वाली पगड़ी और सुनहरे ब्रोकेड का कोट पहन रखा था। अपने जीते हुए देश की धूल उन पर ऐसे लगी थी मानो किसी सैनिक का सम्मान चिह्न हो। उनके चेहरे पर एक शर्मिंदगी भरी मुस्कान थी। उन्होंने कहा, "'मैं' जल्दी घर पहुँचना चाहता था। 'मुझे' देर हो गई।" उनकी बातों में कुछ अटपटा और प्रयोग जैसा भाव था। आखिर उन्हें क्या हो गया था?

उसने उसकी असामान्य झिझक को नजरअंदाज करने और अपनी योजना के अनुसार आगे बढ़ने का फैसला किया।
“ओह, आप ‘चाहते’ थे,” उसने अपने साधारण कपड़ों में सीधी खड़ी होकर कहा, और अपने चेहरे के निचले हिस्से पर रेशमी स्कार्फ खींच लिया। “एक आदमी को पता नहीं होता कि वह क्या चाहता है। एक आदमी वह नहीं चाहता जो वह कहता है कि वह चाहता है। एक आदमी केवल वही चाहता है जिसकी उसे ज़रूरत होती है।”
वह इस बात से हैरान था कि वह उसके द्वारा प्रथम पुरुष में बात करने की बात को स्वीकार नहीं कर रही थी, जबकि यह बात उसे सम्मान देती थी, उसे खुशी से झूम उठना चाहिए था, यह उसकी नवीनतम खोज और प्रेम की घोषणा थी। वह हैरान था, और थोड़ा नाराज़ भी।
“तुमने कितने पुरुषों को जाना है कि तुम्हें इतना ज्ञान है?” वह भौंहें चढ़ाते हुए उसके पास आते हुए बोला। “जब मैं दूर था, तब तुमने अपने लिए पुरुषों की कल्पना की, या तुमने अपने सुख के लिए ऐसे पुरुषों को खोजा जो सपने नहीं थे? क्या ऐसे पुरुष भी हैं जिन्हें मुझे मारना चाहिए?” क्या इस बार वह सर्वनाम की क्रांतिकारी, कामुक नवीनता को समझ पाएगी? क्या अब वह समझ पाएगी कि वह क्या कहना चाह रहा है?
उसने ऐसा नहीं किया। उसे विश्वास था कि वह जानती है कि उसे क्या उत्तेजित करता है, और वह केवल उन शब्दों के बारे में सोच रही थी जो उसे उसे अपना बनाने के लिए कहने थे।
“महिलाएं आम तौर पर पुरुषों के बारे में उतना नहीं सोचतीं जितना कि आम पुरुष सोच भी नहीं सकते। महिलाएं अपने पतियों के बारे में उतना नहीं सोचतीं जितना उनके पति सोचते हैं। सभी महिलाओं को सभी पुरुषों की उतनी आवश्यकता नहीं होती जितनी कि सभी पुरुषों को उनकी होती है। इसीलिए एक अच्छी महिला को दबाकर रखना इतना महत्वपूर्ण है। अगर आप उसे दबाकर नहीं रखेंगे, तो वह निश्चित रूप से आपसे दूर चली जाएगी।”
वह उसका स्वागत करने के लिए सज-धज नहीं कर आई थी। “अगर तुम्हें गुड़िया चाहिए,” उसने कहा, “तो गुड़ियाघर चले जाओ, जहाँ वे तुम्हारा इंतज़ार कर रही हैं, सज-धज कर, चहचहा रही हैं और एक-दूसरे के बाल खींच रही हैं।” यह एक गलती थी। उसने दूसरी रानियों का ज़िक्र कर दिया था। उसकी भौंहें तन गईं और आँखें उदास हो गईं। उसने एक गलत कदम उठा लिया था। जादू लगभग टूट गया था।

उसने अपनी पूरी ताकत उसकी आँखों में डाली, और वह उसकी ओर मुड़ गया। जादू कायम रहा। उसने अपनी आवाज़ ऊँची की और बोलना जारी रखा। उसने उसकी चापलूसी नहीं की। “तुम तो अभी से बूढ़े आदमी जैसे दिखने लगे हो,” उसने कहा। “तुम्हारे बेटे तुम्हें अपना दादा समझेंगे।” उसने उसकी जीत पर उसे बधाई नहीं दी। “अगर इतिहास ने अलग राह पकड़ी होती,” उसने कहा, “तो पुराने देवता आज भी राज करते, वे देवता जिन्हें तुमने हराया है, अनेक अंगों और अनेक सिरों वाले देवता, जो सजाओं और कानूनों की बजाय कहानियों और कर्मों से परिपूर्ण थे, अस्तित्व के देवता कर्म की देवियों के साथ खड़े होते, नाचते हुए देवता, हंसते हुए देवता, वज्र और बांसुरी के देवता, इतने सारे देवता, और शायद यह एक सुधार होता।” वह जानती थी कि वह सुंदर है और अब, अपना पतला रेशमी घूंघट हटाकर, उसने अपनी उस सुंदरता को उजागर कर दिया, और वह उसमें खो गया। “जब कोई लड़का किसी स्त्री का सपना देखता है, तो वह उसे बड़े स्तन और छोटा दिमाग देता है,” उसने धीरे से कहा। “जब कोई राजा पत्नी की कल्पना करता है, तो वह मेरा सपना देखता है।”

वह सात प्रकार की अंगुष्ठाओं में निपुण थी, अर्थात् प्रेम क्रिया को बढ़ाने के लिए नाखूनों का उपयोग करने की कला में। अपनी लंबी यात्रा पर जाने से पहले, उसने उसे तीन गहरे निशान दिए थे, जो उसके दाहिने हाथ की पहली तीन उंगलियों से उसकी पीठ, छाती और अंडकोष पर खरोंच के निशान थे: ताकि वह उसे याद रख सके। अब जब वह घर आ गया था, तो वह बिना कोई निशान छोड़े, अपने नाखूनों को उसके गालों, निचले होंठ और छाती पर रखकर उसे कंपकंपा सकती थी, उसके रोंगटे खड़े कर सकती थी। या वह उसकी गर्दन पर अर्धचंद्राकार आकृति बना सकती थी। वह अपने नाखूनों को धीरे-धीरे उसके चेहरे में चुभो सकती थी। वह खरगोश की तरह उछल-कूद कर सकती थी, उसके शरीर के किसी अन्य हिस्से को छुए बिना, उसके निपल्स के आसपास के निप्पल्स पर निशान बना सकती थी। और जीवित महिलाओं में से कोई भी मोर के पैर की उस नाजुक कलाबाजी में उसके जितनी कुशल नहीं थी: उसने अपना अंगूठा उसके बाएं निप्पल पर रखा और अपनी चार अन्य उंगलियों से उसके स्तन के चारों ओर "घूमती" हुई, अपने लंबे, घुमावदार, पंजे जैसे नाखूनों को, जिन्हें उसने इस खास पल की प्रतीक्षा में सहेज कर तेज किया था, सम्राट की त्वचा में तब तक धंसाती रही जब तक कि वे कीचड़ में चलते हुए मोर के निशान जैसे न बन गए। वह जानती थी कि जब वह ये सब कर रही होगी तो वह क्या कहेगा। वह उसे

बताएगा कि कैसे, अपने सेना के तंबू के एकांत में, वह अपनी आंखें बंद कर लेता था और उसकी हरकतों की नकल करता था, कल्पना करता था कि उसके नाखून उसके शरीर पर चल रहे हैं और वह उत्तेजित हो जाता था।

वह उसके बोलने का इंतज़ार करती रही, पर उसने कुछ नहीं कहा। कुछ बदल गया था। अब उसमें अधीरता थी, लगभग चिड़चिड़ाहट, एक ऐसी झुंझलाहट जिसे वह समझ नहीं पा रही थी। ऐसा लग रहा था मानो प्रेमी की कला की सारी बारीकियां अपना आकर्षण खो चुकी हों और वह बस उसे पाना चाहता हो और बात खत्म। वह समझ गई थी कि वह बदल गया है। और अब सब कुछ बदल जाएगा।

सम्राट ने फिर कभी किसी दूसरे व्यक्ति के सामने अपने लिए एकवचन का प्रयोग नहीं किया। संसार की दृष्टि में वे बहुवचन थे, यहाँ तक कि उन्हें प्रेम करने वाली स्त्री की दृष्टि में भी, और वे हमेशा बहुवचन ही रहेंगे। उन्होंने सबक सीख लिया था।

सम्राट अकबर भारत के महानतम शासकों में से एक थे। वे मुगल वंश से थे और उन्होंने 1556 से 1605 तक शासन किया। यह अंश 'द एनचैंट्रेस ऑफ फ्लोरेंस' से लिया गया है।

छह

~

शिवाजी और उनका समय *

JADUNATH SARKAR

बीजापुर शिवाजी को वश में करने की योजना बना रहा है

1657 में मुगल आक्रमण विफल होने और औरंगजेब के उत्तरी भारत की ओर प्रस्थान करने के बाद, बीजापुर सरकार को कुछ समय की राहत मिली और उसमें अचानक नई ऊर्जा का संचार हुआ। यह सच है कि पुराने प्रधानमंत्री खान मुहम्मद की हत्या औरंगजेब के साथ मिलीभगत के झूठे संदेह पर कर दी गई थी; लेकिन उनके उत्तराधिकारी खवास खान एक कुशल प्रशासक थे। महारानी माँ, बारी साहिबा, जिन्होंने मक्का की अपनी दुखद यात्रा (1660) तक वस्तुतः राज्य का शासन संभाला, एक सशक्त व्यक्तित्व और व्यवसाय संचालन में अनुभवी महिला थीं। सीमा पर मुगलों के निरंतर खतरे से कुछ समय के लिए मुक्त होने के बाद, बीजापुर सरकार ने अपने विद्रोही सामंतों को जवाबदेह ठहराना शुरू कर दिया। शाहजी से उनके विद्रोही पुत्र को दंडित करने के लिए कहा गया, लेकिन उन्होंने स्पष्ट रूप से शिव को अपना पुत्र मानने से इनकार कर दिया और सरकार को अपने पिता की भावनाओं की परवाह

किए बिना उन्हें दंडित करने की छूट दे दी। इसलिए, शिवाजी को बलपूर्वक कुचलने के उपाय किए जाने लगे।

लेकिन यह आसान काम नहीं था। शिव की सैन्य शक्ति कम नहीं थी; और बीजापुर के सरदार पश्चिमी घाट की पहाड़ियों और जंगलों में अभियान चलाने के विचार से कतराते थे। अफजल खान द्वारा स्वीकार किए जाने तक बीजापुर दरबार में शिव के विरुद्ध अभियान का नेतृत्व करने का प्रस्ताव लंबित पड़ा रहा।

अफजल खान का शिव के खिलाफ अभियान

अब्दुल्लाह भातरी, जिन्हें अफजल खान के नाम से जाना जाता था, एक उच्च कोटि के सरदार थे, जिन्होंने बीजापुर के दिवंगत सुल्तान के अधीन सत्ता और सम्मान प्राप्त किया था। सेनापति के रूप में वे राज्य में सर्वोच्च स्थान रखते थे, बहलोल खान और रंदौला खान के समकक्ष थे, और मुगलों के साथ हाल ही में हुए युद्ध में उन्होंने असाधारण वीरता और कौशल का प्रदर्शन किया था। लेकिन उस युद्ध और एक नकाबपोश महिला के अधीन शासन में व्याप्त अव्यवस्था और दरिद्रता के कारण बीजापुर के संसाधन पंगु हो गए थे। अफजल के साथ केवल 10,000 घुड़सवार ही भेजे जा सके, जबकि आम धारणा के अनुसार जावली पर विजय के परिणामस्वरूप शिव की मावले पैदल सेना की संख्या 60,000 हो गई थी, और उन्होंने बीजापुर की भंग की गई सेना से मूल्यवान पठान भाड़े के सैनिकों की एक रेजिमेंट भी भर्ती कर ली थी। इसलिए, अफजल खान ने शिव के साथ खुलेआम बल प्रयोग का विकल्प नहीं चुना। दरअसल, महारानी ने उन्हें शिव को पकड़ने या उसकी हत्या करने का निर्देश दिया था, जिसके लिए उन्हें शिव से "दोस्ती का दिखावा" करना था और आदिल शाह से उसकी क्षमादान दिलाने का प्रस्ताव देना था।

बीजापुर के सेनापति ने वीरता के भाव से यह आदेश स्वीकार किया था और यहाँ तक कि दरबार में शेखी बघारी थी कि वह शिव को अपने घोड़े से उतरे बिना ही बंदी बनाकर वापस ले आएगा। लेकिन उसका मन अपने कार्य की गंभीरता से व्याकुल रहा होगा। उसने अपने उद्देश्य को "भयानक" और कूटनीति के संयोजन से पूरा करने की योजना बनाई। बीजापुर से अभियान दल सीधे उत्तर की ओर तुलजापुर की ओर बढ़ा, जो महाराष्ट्र के सबसे पवित्र तीर्थ स्थलों में से एक और भोंसला वंश की संरक्षक देवी भवानी का स्थान था। अफजल की रणनीति या तो शिव के दक्षिणी किलों की घेराबंदी करके मराठा साम्राज्य के खुले पूर्वी हिस्से से पुणे में प्रवेश करना था, या शिव की आस्था पर घोर आक्रमण करके उन्हें अपने गढ़ों से बाहर आने और बीजापुर सेना

से खुले मैदान में मिलने के लिए उकसाना था। तुलजापुर में उसने भवानी की पत्थर की मूर्ति को हाथ की चक्की में तोड़कर चूर-चूर करने का आदेश दिया।
फिर उसे खबर मिली कि शिव राजगढ़ छोड़कर दक्षिण-पश्चिम में प्रतापगढ़ चले गए हैं। अफजल ने पुणे जाने का इरादा छोड़ दिया और पश्चिम की ओर प्रतापगढ़ की ओर मुड़ गया। रास्ते में उसने मानिकेश्वर, पंढरपुर और महादेव में देवताओं का अपमान किया और ब्राह्मणों पर अत्याचार किए, और दो सप्ताह में सतारा से 20 मील उत्तर में स्थित वाई पहुँच गया। यह अंतिम नगर उसकी जागीर में था, और यहाँ वह कुछ दिनों तक रुका और शिव को कूटनीति से पहाड़ियों से बाहर निकालने या स्थानीय सरदारों के माध्यम से उन्हें पकड़ने की योजना बनाने लगा। उसने गुंजन-मावल के देशमुख विठोजी हैबत राव को पत्र लिखकर कहा कि वे अपने आदमियों के साथ जावली के पास आकर बीजापुरी सेना की सहायता करें। रोहिदखोरे की देशमुखी पद के लिए कान्होजी जेधे के प्रतिद्वंद्वी खंडोजी खोपड़े ने वाई में अफजल से मुलाकात की और देशमुखी पद दिए जाने की शर्त पर शिव को गिरफ्तार करके सौंपने का लिखित वचन दिया।
जब वाई में ये साजिशें रची जा रही थीं, उसी दौरान अफजल ने अपने जमींदार कृष्णजी भास्कर को शिवाजी के पास एक बहुत ही लुभावने संदेश के साथ भेजा। उसने कहा, “आपके पिता मेरे बहुत अच्छे मित्र रहे हैं, इसलिए आप मेरे लिए अजनबी नहीं हैं। मुझसे मिलने आइए, मैं अपने प्रभाव का इस्तेमाल करके आदिल शाह से कोंकण और आपके कब्जे वाले किलों पर आपका अधिकार पक्का करवा दूंगा। मैं आपको हमारी सरकार से और भी सम्मान और सैन्य साजो-सामान दिलवा दूंगा। अगर आप दरबार में आना चाहें, तो आपका स्वागत है। या अगर आप व्यक्तिगत रूप से उपस्थित न होना चाहें, तो आपको छूट दी जाएगी।”
शिवाजी का खतरा और उलझन
इसी बीच, अफजल के आने की खबर से शिव के अनुयायियों में भारी दहशत और घबराहट फैल गई थी। अब तक वे अज्ञात किलों पर अचानक हमला करते, अलग-थलग पड़े काफिलों को लूटते या निजी जागीरदारों की छोटी-मोटी अनियमित टुकड़ियों से झड़पें करते रहे थे। यहाँ उनका पहली बार बीजापुर की नियमित सेना से सामना हुआ, जिसका नेतृत्व एक प्रसिद्ध सेनापति कर रहा था और जिसमें 10,000 सैनिक थे, साथ ही तोपखाना, परिवहन उपकरण और उस युग की सर्वश्रेष्ठ सुसज्जित सेनाओं की सभी सामग्रियाँ मौजूद थीं। इसके अलावा, बीजापुर से वाई तक अफजल

का मार्च निर्बाध रहा था; मराठों ने खुले मैदान में उसका विरोध करने का साहस नहीं किया था, और उसने शिव के उस क्षेत्र को बेरोकटोक लूटा और तबाह कर दिया था जिसे उसने पार किया था। उसकी अदम्य शक्ति और क्रूरता की कहानियाँ मराठा शिविर तक पहुँच चुकी थीं। शिवाजी के अधिकारी स्वाभाविक रूप से प्रतिरोध के विचार से कतरा रहे थे। उन्होंने जो पहली युद्ध सभा बुलाई, उसमें उन्होंने शिवाजी से शांति स्थापित करने का आग्रह किया, क्योंकि शत्रु शक्तिशाली था और शत्रुता से केवल उनके पक्ष को भारी जानमाल का नुकसान होगा।

शिवाजी के जीवन का यह सबसे नाजुक क्षण था। यदि वे अफजल खान के सामने आत्मसमर्पण कर देते, तो उनकी स्वतंत्रता और भविष्य की महानता की सारी आशाएँ हमेशा के लिए समाप्त हो जातीं, और उन्हें बीजापुर के एक अधीन जागीरदार के रूप में ही अपना जीवन समाप्त करना पड़ता, भले ही वे अपने पिछले विद्रोह के प्रतिशोध से बच जाते। फिर भी, बीजापुर की सत्ता के प्रति खुला विरोध उस राज्य के साथ सुलह के द्वार हमेशा के लिए बंद कर देता, और उन्हें उसके बाद हमेशा उस राज्य, मुगलों और अन्य शत्रुओं की शक्ति के विरुद्ध अपने जीवन और स्वतंत्रता की रक्षा के लिए तैयार रहना पड़ता, क्योंकि दुनिया में उनका कोई मित्र या संरक्षक नहीं होता। उनके मंत्रियों और सेनापतियों ने अधिक नीच नीति का समर्थन किया। स्वयं शिवाजी एक भयानक दुविधा में थे। एक रात उन्होंने अपने जीवन के इस विकल्प पर विचार किया और फिर अधिक साहसी मार्ग चुना। एक किंवदंती, जो उनके समकालीनों जितनी ही पुरानी है, हमें बताती है कि चिंताओं से व्याकुल सरदार की नींद देवी भवानी के दर्शन से टूट गई, जिन्होंने उन्हें अफजल का साहसपूर्वक सामना करने के लिए प्रेरित किया और उन्हें विजय और अपनी पूर्ण सुरक्षा का वादा किया।

उन्होंने निश्चय कर लिया था। अगली सुबह परिषद की पुनः बैठक हुई। शिव के वीर वचनों, सम्मान की भावना को जगाने की अपील और देवी के आशीर्वाद की सूचना से प्रेरित होकर उन्होंने युद्ध का संकल्प लिया। अब उन्होंने अत्यंत सूझबूझ और कुशलता से युद्ध की तैयारी की। उन्होंने अपनी माता से परामर्श लिया, जिन्होंने उन्हें आशीर्वाद दिया और उनकी सफलता की भविष्यवाणी की। इसके बाद उन्होंने अपने मारे जाने की स्थिति में शासन चलाने के लिए विस्तृत निर्देश दिए। मोरो त्रिंबक पिंगले और नेताजी पालकर के नेतृत्व में सेनाओं को क्रमशः कोंकण और घाटों से बुलाया गया और प्रतापगढ़ के निकटवर्ती क्षेत्रों में मोर्चा संभालने का आदेश दिया गया।

साजिशें और प्रति-साजिशें

फिर अफजल के दूत कृष्णजी भास्कर वार्ता का निमंत्रण लेकर आए। शिव ने उनका आदरपूर्वक स्वागत किया और रात में गुप्त रूप से उनसे मिलकर एक हिंदू और पुजारी होने के नाते खान के वास्तविक इरादों के बारे में उनसे गंभीर निवेदन किया। कृष्णजी ने इतना ही कहा कि खान किसी शरारती योजना में लीन प्रतीत होता है। तब शिवाजी ने अपने प्रतिनिधि गोपीनाथ पंत के साथ दूत को वापस भेज दिया और अफजल के साक्षात्कार के प्रस्ताव को इस शर्त पर स्वीकार कर लिया कि खान उन्हें सुरक्षा का पुख्ता आश्वासन दे। गोपीनाथ का असली उद्देश्य अफजल की सेना की ताकत और उससे संबंधित अन्य उपयोगी जानकारी जुटाना और खान के वास्तविक उद्देश्य को स्वयं जानना था। गोपीनाथ के माध्यम से शिव ने वचन दिया कि साक्षात्कार के दौरान अफजल को कोई हानि नहीं पहुंचाई जाएगी और अफजल ने भी अपने उद्देश्य की सत्यनिष्ठा का आश्वासन दिया। लेकिन गोपीनाथ ने रिश्वत का भरपूर इस्तेमाल करके यह पता लगाया कि अफजल के अधिकारी इस बात से आश्वस्त थे कि "उसने इस तरह से व्यवस्था की थी कि शिव को साक्षात्कार में ही गिरफ्तार कर लिया जाएगा, क्योंकि वह इतना चालाक था कि खुलेआम लड़ाई में पकड़ा नहीं जा सकता था।" लौटने पर, गोपीनाथ ने शिव को सब कुछ बताया और उसे आग्रह किया कि वह अपने ऊपर होने वाले विश्वासघाती हमले को भांपते हुए एकांत में अफजल की हत्या कर दे और फिर उसकी सेना पर अचानक हमला कर दे।

गोपीनाथ से संकेत पाकर, शिव ने भय का ढोंग किया और वाई जाने से इनकार कर दिया, बशर्ते खान उनसे घर के पास ही न मिलें और व्यक्तिगत रूप से उनकी सुरक्षा और भविष्य में संरक्षण का आश्वासन न दें। अफजल इस बात पर सहमत हो गया। शिव के आदेश पर वाई से प्रतापगढ़ तक घने जंगल से होकर एक रास्ता बनाया गया और रास्ते के विभिन्न बिंदुओं पर बीजापुर सेना के लिए भोजन और पेय पदार्थ तैयार रखे गए। महाबलेश्वर पठार के 'बॉम्बे पॉइंट' के नीचे स्थित राडटोंडी दर्रे से होते हुए, अफजल खान प्रतापगढ़ से एक मील दक्षिण में स्थित पार गाँव की ओर बढ़ा और उसके सैनिक वहाँ कोयना नदी के उद्गम स्थल पर स्थित घाटी में पानी के प्रत्येक स्रोत के पास बिखरे हुए समूहों में डेरा डाले रहे।

खान के आगमन की सूचना देने के लिए गोपीनाथ को पहाड़ी पर भेजा गया। बैठक अगले दिन तय की गई। मुलाकात के लिए प्रतापगढ़ किले के नीचे एक ऊँची पहाड़ी की चोटी को चुना गया, जहाँ से कोयना घाटी का मनोरम दृश्य दिखाई देता था।

पहाड़ी पर बने मंडप तक जाने वाले वन मार्ग के दोनों ओर शिवाजी ने कुछ-कुछ दूरी पर चुनिंदा सैनिकों को घात लगाकर तैनात कर दिया था। यहाँ उन्होंने तंबू लगाए और शाही अतिथि के योग्य भव्य कालीनों और गद्दों से सजा एक सुंदर मंडप स्थापित किया।

फिर उसने सभा के लिए स्वयं को तैयार किया। अपने कुर्ते के नीचे उसने जंजीरों से बना कवच पहना हुआ था और पगड़ी के नीचे खोपड़ी की सुरक्षा के लिए लोहे की टोपी लगाई हुई थी। उसके पास कौन से आक्रामक हथियार थे, यह कोई नहीं देख सकता था; लेकिन उसके बाएं हाथ में लोहे के पंजे (बघनाख) छिपे हुए थे, जो अंगूठियों से उंगलियों में जकड़े हुए थे, और उसकी दाहिनी आस्तीन में बिच्छू नामक एक पतला, तेज खंजर छिपा हुआ था। उसके साथी केवल दो थे, लेकिन दोनों असाधारण साहस और फुर्ती वाले पुरुष थे—जीव महाला, एक कुशल तलवारबाज, और शंभूजी कावजी, हनुमंत राव मोरे का हत्यारा। दोनों के पास दो-दो तलवारें और एक-एक ढाल थी।

जब दल किले से नीचे उतरने ही वाला था कि उनके बीच एक संत जैसी स्त्री प्रकट हुई। वह जीजा बाई थीं। शिव ने अपनी माता को प्रणाम किया। उन्होंने शिव को आशीर्वाद देते हुए कहा, "तुम्हारी विजय हो!" और उनके साथियों को शिव की रक्षा करने का गंभीर आदेश दिया; सभी ने आज्ञापालन का वचन दिया। फिर वे किले की तलहटी तक गए और प्रतीक्षा करने लगे।

शिवा और अफजल के बीच साक्षात्कार

इसी बीच अफजल खान अपने पर स्थित शिविर से एक हजार से अधिक भालाधारी सैनिकों के मजबूत दल के साथ निकल पड़ा। गोपीनाथ ने इस पर आपत्ति जताते हुए कहा कि इस तरह की शक्ति प्रदर्शन से शिव मुलाकात से डरकर भाग जाएंगे, इसलिए खान को शिव की तरह केवल दो अंगरक्षकों को ही साथ ले जाना चाहिए। अतः, उन्होंने अपने सैनिकों को कुछ दूरी पर छोड़कर दो सैनिकों और सैयद बंदा नामक एक प्रसिद्ध तलवारबाज के साथ पालकी में पहाड़ी मार्ग की ओर प्रस्थान किया। उनके साथ दो ब्राह्मण दूत, गोपीनाथ और कृष्णजी भी थे। तम्बू में पहुँचकर अफजल खान ने क्रोधित होकर उसके शाही साज-सज्जा और सजावट को जागीरदार के पुत्र के उचित स्तर से बहुत ऊपर बताया। परन्तु गोपीनाथ ने उन्हें यह कहकर शांत किया कि शिव के समर्पण के फल के रूप में ये सभी कीमती वस्तुएँ शीघ्र ही बीजापुर महल को भेज दी जाएँगी।

शिवा को जल्दी बुलाने के लिए दूत भेजे गए, जो किले के नीचे प्रतीक्षा कर रहे थे। वे धीरे-धीरे आगे बढ़े, फिर सैयद बंदा को देखकर रुक गए और उसे तम्बू से बाहर निकालने का आदेश दिया। आदेश का पालन किया गया और अंततः शिवाजी तंबू में प्रवेश कर गए। दोनों ओर चार-चार व्यक्ति उपस्थित थे—मुख्य व्यक्ति, दो सशस्त्र सेवक और एक दूत। लेकिन शिवा मानो निहत्थे थे, मानो कोई विद्रोही आत्मसमर्पण करने आया हो, जबकि खान की तलवार उनकी कमर पर थी।

सेवक नीचे खड़े थे। शिव ऊंचे चबूतरे पर चढ़े और अफजल को प्रणाम किया। खान अपनी सीट से उठे, कुछ कदम आगे बढ़े और शिव को आलिंगन में लेने के लिए अपनी बाहें फैला दीं। दुबला-पतला मराठा अपने प्रतिद्वंद्वी के कंधों तक ही पहुँच पाता था। अचानक अफजल ने अपनी पकड़ मजबूत कर ली और शिव की गर्दन को अपने बाएं हाथ से लोहे की तरह जकड़ लिया, जबकि अपने दाहिने हाथ से उसने अपनी लंबी सीधी धार वाली कटार निकाली और शिव के बगल पर वार किया। छिपे हुए कवच ने वार को बेअसर कर दिया। शिव दर्द से कराह उठे क्योंकि उन्हें लगा जैसे उनका गला घोंटा जा रहा हो। लेकिन एक पल में ही वे सदमे से उबर गए, अपना बायां हाथ खान की कमर में डाला और लोहे के पंजों से वार करके उसकी आंतें चीर दीं। फिर उन्होंने दाहिने हाथ से बिछवा अफजल के बगल में घुसा दिया। घायल व्यक्ति ने अपनी पकड़ ढीली कर दी, और शिवाजी ने खुद को छुड़ा लिया, चबूतरे से नीचे कूद गए और बाहर खड़े अपने आदमियों की ओर दौड़ पड़े।

खान चिल्लाया, “धोखा! हत्या! मदद! मदद!” सेवक दोनों ओर से दौड़ पड़े। सैय्यद बंदा ने अपनी लंबी सीधी तलवार से शिव का सामना किया और उसकी पगड़ी को दो टुकड़ों में काट दिया, जिससे नीचे की स्टील की टोपी में गहरा निशान पड़ गया। शिव ने तुरंत जीव महाला से एक तेज तलवार ली और वार रोकने लगे। लेकिन जीव महाला अपनी दूसरी तलवार लेकर पलटवार किया, सैय्यद का दाहिना हाथ काट डाला और फिर उसे मार डाला।

इसी बीच, भारवाहकों ने घायल खान को उसकी पालकी में बिठा दिया और उसके शिविर की ओर चल पड़े। लेकिन शंभूजी कावजी ने उनके पैरों पर वार किया, पालकी गिरा दी और फिर अफजल का सिर काट दिया, जिसे वह विजय के प्रतीक के रूप में शिव के पास ले गया।

---

* छत्रपति शिवाजी मराठा साम्राज्य के सबसे प्रसिद्ध शासक थे। उन्होंने 1674 से 1680 तक शासन किया। यह अंश 'शिवाजी और उनका समय' नामक पुस्तक से लिया गया है।

* यह अफजल की सेना की वह संख्या है जो समकालीनों, जैसे कि तारीख-ए-अली द्वितीय, खंड 76 और अगले नोट में उद्धृत अंग्रेजी पत्र के अनुसार दी गई है। मराठा वृत्तांत, जो बहुत बाद के हैं, उसमें पैदल सेना के अतिरिक्त 12,000 घुड़सवारों की संख्या बताई गई है; कुल 30,000 सैनिक, जिनमें "क्षेत्र से परिचित 3,000 मावले भी शामिल हैं।"

“इस वर्ष रानी ने शिवाजी के विरुद्ध अब्दुल्ला खान को 10,000 घुड़सवार और पैदल सैनिकों के साथ भेजा, और क्योंकि वह जानती थी कि इतनी शक्ति से वह शिवाजी का सामना नहीं कर पाएगा, इसलिए उसने उसे अपने शत्रु से मित्रता का दिखावा करने की सलाह दी, जिसे उसने किया। और दूसरे (अर्थात शिवाजी) ने, चाहे गुप्त सूचना के कारण या संदेह के कारण, उसके प्रति अपने प्रेम का दिखावा किया, इत्यादि।” (राजपुर के फैक्टर्स से सूरत की परिषद को, 10 अक्टूबर 1659, एफ. आर. राजपुर)।

* खफी खान का कहना है कि अफजल और शिवाजी दोनों निहत्थे होकर साक्षात्कार के लिए आए थे। लेकिन कमर पर तलवार न बांधे रहना, पराजित पक्ष का प्रथागत रवैया था, जिसका वर्णन फारसी इतिहासों में अक्सर मिलता है। निचले किले के दक्षिण-पूर्वी हिस्से में स्थित एक बाहरी संरचना में बने एक बुर्ज (जिसे अब्दुल्ला बुर्ज कहा जाता है) के नीचे सिर को दफनाया गया था। इससे कुछ ही दूरी पर शिवाजी द्वारा निर्मित भवानी मंदिर स्थित है।

सात

~

सुल्तान की धोखाधड़ी *

RAJMOHAN GANDHI

अपने पिता से कद में छोटा, सांवली त्वचा वाला और बड़ी आँखों वाला टीपू (विल्क्स के अनुसार) 'साधारण और बिना किसी बोझ वाले वस्त्र पहनता था, जिसकी वह अपने आसपास के लोगों से भी अपेक्षा करता था... वह आमतौर पर घुड़सवारी करता था और घुड़सवारी को बहुत महत्व देता था, जिसमें उसे निपुण माना जाता था... वह पालकी में यात्रा करने का उपहास करता था।'

> बाघ उनका आदर्श था।
>
> टीपू कहा करता था कि दो सौ साल तक भेड़ की तरह घिसटते रहने से बेहतर है दो दिन बाघ की तरह जीना... उसने अपने किले-नगर सेरिंगापट्टम में छह बाघ रखे हुए थे, जहाँ उसका सिंहासन बाघ के आकार और धारियों वाला था... उसकी तलवार का मूठ दहाड़ते हुए बाघ के रूप में था, और उसका पसंदीदा खिलौना एक यांत्रिक बाघ था जो एक ब्रिटिश अधिकारी के ऊपर बैठा था जबकि पीड़ित डर से चीख रहा था।

अठारहवीं शताब्दी के भारत में दर्जनों सरदारों में से टीपू एकमात्र ऐसा सरदार था जिसने अंग्रेजों को सचमुच भयभीत कर दिया था। उसकी प्रसिद्धि बढ़ती गई और टीपू

को भारत के ऐतिहासिक नायकों की सूची में एक स्थायी स्थान मिल गया। यह जानकारी कि वह कट्टर और निर्दयी हो सकता था, उसकी छवि को धूमिल नहीं कर पाई। पिछले लगभग दो दशकों में स्थिति बदल गई है। कुछ लोगों के लिए 'टीपू एक क्रूर कट्टरपंथी था' ही एकमात्र सत्य प्रतीत होता है।

किसी पूर्व शासक को 'नायक' या 'खलनायक' का लेबल देने से कहीं अधिक उपयोगी यह जानना है कि उसे और उसके राज्य को किन मुद्दों का सामना करना पड़ा, उसके पक्ष और विपक्ष में शक्तियों का गठबंधन कैसा था, शासक की प्रतिक्रियाएं और पहलें क्या थीं, और उस समय जनता की क्या प्रतिक्रिया थी।

जांच-परख के लिए पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है, जिसमें उनके अधीन काम करने वाले दो व्यक्तियों द्वारा लिखी गई जीवनियाँ शामिल हैं, एक फारसी में मीर हुसैन किरमानी द्वारा और दूसरी मराठी में रामचंद्र राव पुंगनूरी द्वारा (जो लगभग पूरी तरह से किरमानी की पुस्तक पर आधारित प्रतीत होती है); और विल्क्स जैसे ब्रितानियों के विवरण, जिन्होंने उनके खिलाफ लड़ाई लड़ी, साथ ही दर्जनों बाद की रचनाएँ भी शामिल हैं।

~

हालाँकि अंग्रेजों ने थोड़े समय के लिए टीपू से कोयंबटूर छीन लिया था, लेकिन टीपू ने मंगलुरु बंदरगाह पर कब्ज़ा कर लिया, जिससे कंपनी को उसके साथ संधि पर हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य होना पड़ा। मार्च 1784 की यह 'मंगलौर संधि', जिसने द्वितीय एंग्लो-मैसूर युद्ध के अंत का प्रतीक थी, ने टीपू को कोयंबटूर वापस लौटा दिया और उसके प्रति फ्रांसीसी रुचि को पुनर्जीवित कर दिया।

श्रीरंगपट्टनम और मालाबार तट के बीच सबसे छोटे मार्ग को अवरुद्ध करते हुए, और जोशीले कोडवा समुदाय की मेजबानी करते हुए, कूर्ग के पहाड़ों पर बिदानूर से जुड़े राजाओं का शासन था, जब तक कि हैदर ने नियंत्रण अपने हाथ में नहीं ले लिया और शासक परिवार को कैद नहीं कर लिया।

अपने अधीनता से हमेशा बेचैन रहने वाले गर्वित कोडवा लोग उस समय क्रोधित हो गए जब मंगलुरु में अंग्रेजों पर अपनी विजय के बाद, टीपू ने कूर्ग पर अपना नियंत्रण और कड़ा कर दिया, मदिकेरी (मर्करा) में स्थित अपने प्रमुख किले में अपनी सेना को मजबूत किया, अपने दिवंगत पिता के खिलाफ विद्रोह करने के लिए उनके सरदारों को फटकारा और उनकी धार्मिक मान्यताओं का उपहास किया।

कोडावों ने एक बार फिर विद्रोह किया, और टीपू ने फ्रांसीसी बटालियन सहित एक विशाल सेना लेकर कूर्ग पर आक्रमण किया। कोडावों का दमन तो हो गया, लेकिन क्रोध और कट्टरता ने दृढ़ता का साथ दिया। बड़ी संख्या में कोडावों को मार डाला गया या जबरन धर्म परिवर्तन कराया गया, और कई लोगों को श्रीरंगपट्टना ले जाया गया।
जब 1783 में पेरिस में हस्ताक्षरित एक संधि में अंग्रेजों ने अमेरिकी स्वतंत्रता को मान्यता दी, तो भारत से जुड़े फ्रांसीसी लोगों का हौसला बढ़ा। बुस्सी ने सोचा कि क्या वे 'खुद को खतरे में डाले बिना अंग्रेजों के खिलाफ तीनों भारतीय शक्तियों [मराठा, हैदराबाद और मैसूर] को एकजुट नहीं कर सकते'।
लेकिन भारतीय आपस में गठबंधन करने में रुचि नहीं रखते थे। दरअसल, निज़ाम ने उस समय के कमज़ोर मुगल सम्राट शाह आलम द्वितीय को टीपू को मैसूर के शासक के रूप में मान्यता न देने के लिए प्रभावित किया था।
जैसा कि बुस्सी ने स्वयं कहा था, 'मराठों और निज़ाम ने टीपू सुल्तान को नष्ट करने के लिए गठबंधन किया है। यह योजना अंग्रेजों के लिए एकदम उपयुक्त है।' इसके अलावा, फ्रांस के पूर्वी क्षेत्रों के गवर्नर जनरल विस्काउंट डी सौइलाक टीपू को 'घमंडी, अभिमानी, अभिमानी और अविश्वसनीय' मानते थे। टीपू को फ्रांसीसियों पर निर्भर बनाने के लिए, डी सौइलाक चाहते थे कि अंग्रेज उसे हरा दें।
अंततः, मैसूर में टीपू की पूर्ण सत्ता स्थापित होने और मराठों तथा निज़ामों के अंग्रेजों के साथ समझौता होने के बाद, गवर्नर जनरल डी सौइलाक ने टीपू को पेरिस में लुई सोलहवें के पास दूतावास भेजने की अनुमति दे दी। इस यात्रा के लिए ल'ऑरोर नामक एक जहाज उपलब्ध कराया गया।
9 मार्च 1786 को, ल'ऑरोर सहित चार जहाज मालाबार तट से रवाना हुए। इन जहाजों में तीन राजदूत, लगभग 900 लोगों का दल, चार हाथी (एक तुर्की, एक फ्रांस और एक इंग्लैंड के शासकों के लिए, चौथा बेचने के लिए), निजी सामान और बिक्री के लिए रखे गए बड़े-बड़े बक्से थे। जहाज पर चढ़ने के लिए अफरा-तफरी मची हुई थी, क्योंकि वापसी यात्रा में इस्लाम के पवित्र स्थलों पर रुकने का इरादा था।
यह मिशन एक आपदा साबित हुआ। चार में से तीन जहाज यात्रा के दौरान नष्ट हो गए और केवल कुछ ही लोग जीवित लौट पाए। जहाज़ों के डूबने, महामारी और कॉन्स्टेंटिनोपल (इस्तांबुल) की भीषण सर्दी ने महिलाओं और बच्चों सहित सैकड़ों लोगों की जान ले ली।

पहले मस्कट और फिर बसरा के लिए नौका विहार करने के बाद, दल ने मोसुल और दियारबाकिर होते हुए खतरनाक इलाकों से गुजरते हुए सड़क मार्ग से इस्तांबुल की यात्रा की। मस्कट में माओजी शेठ नामक एक भारतीय व्यापारी और बसरा में उनके प्रतिनिधि सेवा और राम ने सहायता की, लेकिन राजदूतों के बीच मतभेद ने व्यापार के साथ-साथ कूटनीति को भी नुकसान पहुंचाया।

नवंबर 1787 में इस्तांबुल में, तुर्की के सुल्तान अब्दुल हामिद प्रथम ने मिशन के बचे हुए सदस्यों से मुलाकात की। टीपू के सिंहासन को मान्यता तो मिल गई, लेकिन यह पर्याप्त सांत्वना नहीं थी। उस समय रूसियों से लड़ रहे तुर्कों ने टीपू की मदद करके अंग्रेजों को भी नाराज़ करने की इच्छा नहीं जताई, और इस्तांबुल में फ्रांसीसी एजेंटों ने टीपू के आदमियों को बताया कि फ्रांस का माहौल बदल गया है और उनका वहां स्वागत नहीं किया जाएगा।

अचानक अपना रास्ता बदलते हुए, छोटा किया गया यह मिशन घर की ओर रवाना हुआ, रास्ते में अरब के पवित्र स्थानों पर रुकता हुआ। जब दिसंबर 1789 में मालाबार तट पर यात्रा समाप्त हुई, तो मुट्ठी भर लोग ही जीवित बच कर किनारे पर उतरे।

इसी बीच, दृढ़ निश्चयी टीपू ने एक और मिशन सीधे फ्रांस भेजा। यह मिशन पेरिस पहुँचने में सफल रहा और अगस्त 1788 में वर्साय के महल में स्थित सैलून डी हरक्यूलिस में लुई सोलहवें और उनकी रानी मैरी एंटोनेट द्वारा इसका स्वागत किया गया।

कुछ दिनों तक पूर्वी देशों के लोगों ने हलचल मचा दी, लेकिन फ्रांसीसी क्रांति नजदीक ही थी, हालांकि राजा और रानी को 1793 तक फांसी नहीं दी जानी थी।

फ्रांस में हो रहे बदलावों को न समझते हुए, टीपू के दूतों ने 10,000 फ्रांसीसी सैनिकों की मांग की, जिनके लिए (उन्होंने कहा) मैसूर भुगतान करेगा, और उन्होंने फ्रांसीसियों को दक्षिण भारत (मद्रास और पांडिचेरी के निकट) और बंगाल और बिहार में विशाल भूभाग देने का वादा किया। इन प्रस्तावों को गंभीरता से नहीं लिया गया। 1788 का फ्रांस टीपू की सहायता करने की स्थिति में नहीं था।

कुछ छोटी-मोटी समस्याएं भी थीं। मैसूरवासियों ने शिकायत की कि जिस महल में वे ठहरे थे वह पर्याप्त बड़ा नहीं था, वहीं फ्रांसीसी मेज़बानों ने संकेत दिया कि उनके राजा के लिए लाए गए उपहार उतने मूल्यवान नहीं थे। ऐसा प्रतीत होता है कि

प्रतिनिधिमंडल फ्रांस छोड़ने के लिए अनिच्छुक था, इसलिए उन्हें प्रस्थान के लिए राजी करना पड़ा।
1780 के दशक के उत्तरार्ध में टीपू द्वारा आदेशित ये पश्चिम की ओर के अभियान गलत योजना पर आधारित, अपर्याप्त तैयारी वाले, गलत समय पर किए गए और खर्चीले थे।

~

जब दिसंबर 1789 में तुर्की मिशन के बचे हुए सैनिक दक्षिणी मालाबार तट पर लौटे, तो टीपू पास ही में था, तथाकथित त्रावणकोर लाइन्स को भेदने की कोशिश कर रहा था, जिसका निर्माण 1760 के दशक में त्रावणकोर के राजा राम वर्मा के लिए उनके डच/बेल्जियम कमांडर-इन-चीफ, चतुर यूस्टेशियस डी लैनॉय द्वारा किया गया था।
डी लैनॉय, जिन्हें पहले कैद किया जा चुका था, को रामा वर्मा के पूर्ववर्ती मार्तंडा वर्मा ने त्रावणकोर की सेना को मजबूत करने के लिए भर्ती किया था। उत्तर से होने वाले जमीनी आक्रमणों से त्रावणकोर की रक्षा करते हुए, ये लाइनें वास्तव में त्रावणकोर के पड़ोसी और अक्सर प्रतिद्वंद्वी रहे कोचीन (कोच्चि) की भूमि पर बनाई गई थीं। दशकों तक डचों के कब्जे में रहने वाला कोचीन, 1770 के दशक में मैसूर का एक सहायक राज्य बन गया था।
समुद्र से चिन्नामंगलम नामक नदी तक लगभग चार मील और नदी से पहाड़ियों तक लगभग 24 या 25 मील की दूरी तक फैली ये सीमाएँ, अपनी अधिकांश लंबाई में, 16 फीट चौड़ी और 20 फीट गहरी खाई या गड्ढा थीं। बांस की बाड़ और एक प्राचीर खाई की रक्षा करती थी। पास ही, कोचीन क्षेत्र में, क्रांगनोर (कोडुनगल्लूर) का किला स्थित था।
आज इन रेखाओं के कुछ ही निशान बचे हैं, लेकिन दिसंबर 1789 में ये वो स्थान थे जहाँ से त्रावणकोर ने टीपू की सेना के विरुद्ध सफलतापूर्वक रक्षा की थी। उसी वर्ष की शुरुआत में, राम वर्मा, जिनका अंतिम लक्ष्य 'मालाबार को एक ध्वज के नीचे एकजुट करना' था, ने डचों से क्रांगानोर किला खरीदा था। त्रावणकोर और डचों के बीच हुए इस सौदे से टीपू नाराज हो गया, क्योंकि वह भी इस किले पर अधिकार चाहता था और मानता था कि कोचीन के अधिपति के रूप में इसे पहले उसे ही दिया जाना चाहिए था।

28 दिसंबर को, त्रावणकोर के लगभग 800 नायर सैनिकों ने, एक छह-पाउंडर तोप की सहायता से, न केवल मैसूर की प्रसिद्ध सेना को मोर्चे पर कब्जा करने से रोका, बल्कि उन्होंने हमलावरों को भारी नुकसान पहुंचाया, जो घबराकर पीछे हट गए।
बाद में ऐसी खबरें फैलीं, जिन पर विल्क्स ने भी विश्वास जताया, कि टीपू आक्रमणकारियों में शामिल थे, उन्हें बंदूक की गोली लगी थी और उनकी पालकी और हथियार नायरों ने छीन लिए थे। इस कहानी का खंडन किया गया। हालांकि टीपू आसपास ही थे, लेकिन कहा गया कि उस दिन वे मोर्चे पर मौजूद नहीं थे, और यह बात दोहराई गई कि टीपू कभी पालकी का इस्तेमाल नहीं करते थे।
फिर भी, 28 दिसंबर 1789 को नायर की विजय एक ऐसी वास्तविकता थी जिसे मलयाली लोग तब से गर्व के साथ याद करते आए हैं। अप्रैल 1790 में, मैसूरियों ने फिर से सेना की चौकियों पर हमला किया और उन पर कब्जा कर लिया, और मई में क्रांगानोर किले पर भी कब्जा कर लिया गया, लेकिन जब टीपू को यह खबर मिली कि अंग्रेज उसके राज्य पर आक्रमण करने के लिए तैयार हैं, तो वह श्रीरंगपट्टनम की ओर वापस लौट गया।

~

अंग्रेजों ने त्रावणकोर घटना का फायदा उठाकर एक व्यापक युद्ध छेड़ दिया, जिसे इतिहास में तीसरे एंग्लो-मैसूर युद्ध के नाम से जाना जाता है। मंगलौर की संधि में ब्रिटिश सहयोगी नामित त्रावणकोर ने कंपनी से सहायता मांगी, जिससे लॉर्ड चार्ल्स कॉर्नवालिस को वह अवसर मिल गया जिसका वे इंतजार कर रहे थे।
पश्चिमी गोलार्ध में अमेरिकियों के खिलाफ असफल लड़ाई के बाद, कॉर्नवालिस 1786 में भारत में गवर्नर जनरल बन गए थे। मैसूर के खिलाफ शिकायतें पालते हुए और उसकी भूमि और धन से आकर्षित होकर, मराठों के साथ-साथ हैदराबाद के निज़ाम (मीर निज़ाम अली) ने ब्रिटिश पक्ष में युद्ध में भाग लिया।
कंपनी में सभी लोग मैसूर पर युद्ध के पक्षधर नहीं थे। मराठों का क्षेत्र बड़ा था और वे एक बहुत बड़ी सेना जुटाने में सक्षम थे, इसलिए कई लोग उन्हें भारत में ब्रिटेन की सबसे बड़ी बाधा मानते थे। हालांकि, टीपू की सेनाओं के बारे में जानकारी जुटाने के लिए वेल्लोर के पास अंबूर में तैनात अट्ठाईस वर्षीय लेफ्टिनेंट थॉमस मुनरो ने इसके विपरीत तर्क दिया। जनवरी 1790 में उन्होंने अपने पिता को लिखा:

> हमारे देश और विदेश दोनों जगह के सत्ताधारियों द्वारा इसे लंबे समय से एक स्वयंसिद्ध सत्य के रूप में स्वीकार किया गया है... कि टीपू को हमारे और मराठों के बीच एक बाधा के रूप में संरक्षित रखा जाना चाहिए... [लेकिन यह] एक कमजोर दुश्मन से हमारी रक्षा करने के लिए एक शक्तिशाली और महत्वाकांक्षी दुश्मन का समर्थन करने जैसा है...
>
> मैसूर में दुनिया की सबसे सरल और निरंकुश राजशाही है, जिसमें हर विभाग, चाहे वह नागरिक हो या सैन्य, हैदर की प्रतिभा द्वारा निर्मित नियमितता और व्यवस्था से युक्त है...
>
> दूसरा...विस्तृत साम्राज्य वाले स्वतंत्र सरदारों का एक संघ, जो कभी मिलकर काम करते हैं, कभी एक-दूसरे से ईर्ष्या करते हैं...और जो हमेशा निजी लाभ की दूरगामी संभावनाओं से प्रभावित हो सकते हैं, कभी भी खतरनाक शत्रु नहीं हो सकते...[और] यह कोई स्थायी सेना नहीं रखता और न ही किसी धार्मिक सिद्धांत से प्रेरित होकर भिन्न आस्था वाले लोगों का सफाया करने का प्रयास करता है।

दूसरी ओर, मुनरो ने तर्क दिया, 'टीपू 110,000 सैनिकों की सेना का समर्थन करता है, यूरोपीय रणनीति के हर सिद्धांत का बड़े उत्साह से पालन करता है... और वह अपनी सभी असाधारण प्रतिभाओं के साथ, एक ऐसे धर्म का कट्टर अनुयायी है, जो मुनरो के अनुसार, 'अन्य संप्रदायों के विनाश पर शाश्वत सुख आधारित करता है।'

मुनरो के पत्र में व्यक्त विचार प्रबल हुआ और टीपू को निशाना बनाया गया। सहयोगी सेनाएँ उसके क्षेत्र के चारों ओर कई स्थानों से आगे बढ़ीं। अनुभवी कॉर्नवॉलिस ने स्वयं ब्रिटिश सेना की कमान संभालते हुए फोर्ट सेंट जॉर्ज से कूच किया। मैसूर राजधानी के ठीक दक्षिण में स्थित कोयंबटूर पर एक अन्य ब्रिटिश टुकड़ी ने शीघ्र ही कब्जा कर लिया।

दो मराठा सेनाएँ राज्य के उत्तर-पश्चिम से आगे बढ़ीं, एक दक्षिण की ओर धारवाड़ की ओर, दूसरी दक्षिण-पूर्व की ओर कुरनूल की ओर। निज़ाम की सेना भी दक्कन पठार पर दक्षिण की ओर बढ़ रही थी, वहीं बंबई से रवाना हुई ब्रिटिश टुकड़ियों ने मालाबार तट पर स्थित कालीकट और कन्नूर पर कब्जा कर लिया और दक्षिण-पश्चिम से श्रीरंगपट्टनम को घेरने की तैयारी में जुट गईं, जो कावेरी नदी से घिरा और संरक्षित एक द्वीप था।

युद्ध में फंसे लोगों के लिए दुख की बात यह थी कि यह घोर अभाव का भी समय था। नौ साल बाद, कंपनी के डॉक्टर/वैज्ञानिक/अधिकारी, बुकानन, चिकबल्लापुर से कुछ ही दूरी पर स्थित बोम्मा समुद्रम नामक स्थान पर पहुँचकर अपनी डायरी में लिखेंगे:

> 25 जुलाई 1800: [अकाल की भयावहता] यहाँ कभी इतनी गंभीर रूप से महसूस नहीं की गई, जितनी लॉर्ड कॉर्नवालिस के आक्रमण के दौरान, जब देश पर चारों ओर से हमला किया गया और शत्रु सेनाओं द्वारा हर दिशा में घुसपैठ की गई, या बचाव करने वाली सेनाओं द्वारा, जो कम विनाशकारी नहीं थीं, कम से कम आधे निवासी घोर अभाव से मर गए।

इतिहास लेखन की यह एक कड़वी सच्चाई है कि इस तरह के वाक्यांश को खोजा जाता है, शामिल किया जाता है, इटैलिक में लिखा जाता है - और फिर चुपचाप छोड़ दिया जाता है।

~

मार्च 1791 में बैंगलोर पर कब्ज़ा करने के बाद, कॉर्नवालिस ने इसे अपना आधार बनाया और मराठा और हैदराबाद की सेनाओं से संपर्क साधने के प्रयासों के दौरान वह कई बार यहाँ लौटा। मार्च 1791 में, हम देख सकते हैं कि 'बैंगलोर शहर...किले के उत्तर में स्थित...गोलाकार था और लगभग तीन मील की परिधि में फैला हुआ था। इसकी सड़कें चौड़ी थीं...भारत के कुछ ही शहरों में इससे बेहतर घर और इतने धनी निवासी थे।'

नौ साल बाद शहर का दौरा करते हुए, बुकानन ने कॉर्नवालिस द्वारा किए गए हमले के बारे में यह कहा:

> बैंगलोर या बेंगलुरु, हैदर द्वारा स्थापित एक शहर है, जो उस राजकुमार के कुशल शासनकाल में एक महत्वपूर्ण स्थान बन गया। उस समय इसका व्यापार बहुत अधिक था और इसके उद्योग बहुसंख्यक थे।
>
> टीपू ने अरकोट और हैदराबाद के राज्यों के साथ व्यापार पर प्रतिबंध लगाकर इस क्षेत्र की विपत्तियों की शुरुआत की... [उनके उपायों] ने इस जगह को बहुत नुकसान पहुंचाया; लेकिन फिर भी यह आबादी वाला क्षेत्र था, और कई व्यक्ति धनी थे, जब भगवान ने शासन किया। कॉर्नवालिस उससे पहले ही वहाँ पहुँच गया था, और उसकी सेना रसद की कमी के कारण बहुत संकट में थी।

> इससे कॉर्नवालिस को तुरंत हमला करने के लिए विवश होना पड़ा, और शहर को लूट लिया गया। धनी निवासियों ने पहले ही अपनी सबसे मूल्यवान वस्तुएं किले में सुरक्षित रख ली थीं; लेकिन जब उस किले पर भी आक्रमण कर कब्जा कर लिया गया, तो वे वस्तुएं भी हमलावरों के हाथ लग गईं।

जवाबी कार्रवाई में, टीपू ने निहत्थे कोयंबटूर पर पुनः कब्जा कर लिया। दो ब्रिटिश सेनाओं के बीच से होते हुए, वह पांडिचेरी भी पहुँच गया, लेकिन वहाँ फ्रांसीसी सेना उसकी सहायता करने की स्थिति में नहीं थी। अपने देश में हुई क्रांति ने उन्हें पंगु बना दिया था।

बातचीत करने की कोशिश में, टीपू ने ब्रिटिश शिविर में पुराने अपाजी राम को भेजा, जिन्हें विल्क्स 'अनुभवी राजनयिक' कहते हैं, जिन्होंने बीस साल पहले मराठों के साथ चतुराई से बातचीत की थी। कॉर्नवालिस ने फरवरी 1791 में इस पहल को ठुकरा दिया, साथ ही तीन महीने बाद टीपू द्वारा भेजे गए एक और प्रस्ताव को भी अस्वीकार कर दिया। गवर्नर जनरल के इस रुख की जेम्स मिल ने 1817 में अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इंडिया' में कड़ी आलोचना की, जो अगले चार दशकों तक भारत में साम्राज्य के अधिकारियों के लिए मानक मार्गदर्शक बनी रही।

~

कॉर्नवालिस की सेना में एक सैनिक के रूप में सेवा करते हुए, विल्क्स ने बाद में प्रत्यक्षदर्शी विवरण प्रदान किए जो भारतीय सहयोगियों के प्रति कंपनी की अवमानना को उजागर करते हैं और साथ ही जीवंत चित्र भी प्रस्तुत करते हैं। अप्रैल 1791 में बैंगलोर के पास अंग्रेजों से शामिल हुई निज़ाम की सेना का जिक्र करते हुए, विल्क्स 'उत्कृष्ट स्थिति में घोड़ों पर सवार दस हजार सैनिकों' का उल्लेख करते हैं और आगे कहते हैं:

> संभवतः यूरोप में प्राचीन कवच के किसी भी राष्ट्रीय या निजी संग्रह में ऐसा कोई हथियार या व्यक्तिगत उपकरण नहीं है जो इस विविध संग्रह में मौजूद न हो: पार्थियन धनुष और बाण, सिथिया का लोहे का गदा, हर युग और राष्ट्र की कृपाणें, हर प्रकार और ताकत के भाले, और हर तरह की माचिस वाली बंदूकें, हर पैटर्न के धातु के हेलमेट, चेहरे की सुरक्षा के लिए तिरछी लटकती हुई स्टील की छड़... कवच के पूरे कोट, और कृपाण-रोधी रजाईदार जैकेट...

इस भव्य उपस्थिति में निम्नलिखित बातें भी शामिल थीं:

> व्यवस्था, आज्ञापालन या आदेश के किसी भी लक्षण का पूर्ण अभाव, सिवाय उन समूहों के जो अपने-अपने झंडों के चारों ओर एकत्रित थे; [जहाँ] प्रत्येक व्यक्ति एक स्वतंत्र योद्धा था, स्व-प्रेरित, जो स्वयं को उस चैंपियन के रूप में प्रस्तुत करता था जिसकी एकमात्र भुजा विजय प्राप्त करने वाली थी...।

विल्क्स के अनुसार, अंग्रेजों को उम्मीद थी कि निज़ाम की सेना इलाके की निगरानी करेगी और 'पार किए जाने वाले क्षेत्र' से संसाधन मुहैया कराएगी, लेकिन यह सहायता नहीं मिली। इससे भी बुरी बात यह थी कि निज़ाम के सैनिकों ने उन जमीनों से चारा और अनाज खा लिया जहाँ अंग्रेज डेरा डाले हुए थे और अंग्रेजों के मित्र गांवों को लूट लिया।

1791 की गर्मियों में, जब कॉर्नवॉलिस अपनी सेना के साथ पश्चिम की ओर बढ़ा, तो उसका लक्ष्य निज़ाम की सेना और, जैसा कि उसे उम्मीद थी, मराठों के साथ कावेरी नदी पार करके राजधानी पर हमला करना था। जीत सुनिश्चित करने के लिए, बॉम्बे से समुद्र के रास्ते रवाना हुई और कालीकट से पूर्व की ओर बढ़ रही एक ब्रिटिश सेना को भी हमले में शामिल होना था।

इस बहुप्रतीक्षित योजना को छोड़ना पड़ा क्योंकि कॉर्नवालिस की सेना भुखमरी के कगार पर थी, मराठा सहयोगी दूर-दूर तक नज़र नहीं आ रहे थे, और टीपू के सैनिकों ने श्रीरंगपट्टनम से 10 मील पूर्व में स्थित अरकेरे में ज़बरदस्त लड़ाई लड़ी और सुरक्षित रूप से अपनी राजधानी लौट आए। भारी मालगाड़ियों के आगे बढ़ने में आसानी के लिए अरकेरे के पास एक बांध को तोड़ने का ब्रिटिश प्रयास बांध की मज़बूती के कारण 'छोड़ दिया गया'।

श्रीरंगपट्टनम के आसपास के क्षेत्र में, टीपू ने एक महत्वपूर्ण सप्ताह तक अपने शत्रुओं को एकजुट होने से रोका, यह उपलब्धि उन्होंने ज़मीन पर मौजूद चुस्त एजेंटों के माध्यम से हासिल की, जो टीपू को उनके शत्रुओं की गतिविधियों की जानकारी देते रहे, जबकि शत्रु हमलावरों को उनके सहयोगियों के ठिकाने के बारे में गुमराह करते रहे। विल्क्स ने लिखा:

> लॉर्ड कॉर्नवालिस ने चाहे कितनी भी सावधानी से अपने इरादों को छिपाया हो... वे सुल्तान को स्पष्ट रूप से ज्ञात थे... अंग्रेजी सेना के खिलाफ टीपू की गतिविधि झूठी सूचनाओं के प्रसार में कुशलतापूर्वक प्रदर्शित हुई।

विल्क्स का टीपू के प्रति समग्र रूप से बेहद नकारात्मक दृष्टिकोण, 1791 की गर्मियों के दौरान टीपू और उसके आदमियों द्वारा दिखाई गई क्षमताओं पर उनके अवलोकनों को दिलचस्प बनाता है। अरकेरे की लड़ाई के बारे में वे कहते हैं:

> टीपू सुल्तान ने [टकराव] से इनकार नहीं किया, और न्यायसंगत रूप से उनकी प्रशंसा से इनकार नहीं किया जा सकता... क्योंकि उन्होंने अपनी गतिविधियों को तत्परता और विवेक के साथ अंजाम दिया।

दक्षिण-पश्चिम से आगे बढ़ रही ब्रिटिश टुकड़ी के बारे में, जिसका नेतृत्व रॉबर्ट एबरक्रॉम्बी कर रहे थे, विल्क्स ने लिखा:

> सुल्तान की हल्की टुकड़ियों की सराहनीय दक्षता ने जनरल एबरक्रॉम्बी की स्थिति के बारे में किसी भी प्रकार के संचार को रोक दिया था, जिस पर लॉर्ड कॉर्नवालिस के निर्णय काफी हद तक निर्भर थे।

बैंगलोर से श्रीरंगपट्टनम की लंबी यात्रा कॉर्नवालिस के ब्रिटिश सैनिकों के लिए धीमी और कठिन साबित हुई, जिन्हें रसद की भारी कमी का सामना करना पड़ा। टीपू की अनियमित घुड़सवार सेना स्थानीय आपूर्ति को बाधित करने में सफल रही थी, और मैसूरवासियों की अनिच्छा के कारण प्रत्यक्ष सहायता भी अनुपलब्ध थी।

> सेना की कई भारी तोपें, साथ ही साथ मैदानी तोपें...और सभी तोपगाड़ियाँ और सेना की लगभग हर सार्वजनिक गाड़ी सैनिकों द्वारा ही खींची जाती थीं।

कॉर्नवॉलिस के सैनिक थके-हारे और भूखे थे, और मराठा सेना गायब थी। ऐसे में कॉर्नवॉलिस ने न केवल पीछे हटने का आदेश दिया, बल्कि अपने भारी घेराबंदी उपकरणों को नष्ट करने का भी आदेश दिया। टीपू ने एक ऐसे गवर्नर जनरल को हराया था जो अमेरिका में एक बड़े युद्ध से गुज़रा था।

~

उस शर्मनाक आदेश के लागू होने के तीन दिन बाद, थके-हारे अंग्रेजों को घुड़सवारों की एक नई टुकड़ी का सामना करना पड़ा, जिससे वे आश्चर्यचकित रह गए। कॉर्नवालिस के लिए सौभाग्य की बात यह थी कि ये घुड़सवार टीपू के नहीं बल्कि मराठों के थे। विल्क्स ने दर्ज किया कि टीपू की हल्की घुड़सवार सेना ने मराठों के 'वास्तव में दिखाई देने' तक उनके आगमन की खबर को ब्रिटिश शिविर तक पहुंचने से रोक दिया था।

विल्क्स से हमें 1791 की गर्मियों के दृश्यों की और भी तस्वीरें मिलती हैं, जो शायद पूर्वाग्रह से ग्रसित हों, फिर भी काफी खुलासा करने वाली हैं।

दो सप्ताह से पौष्टिक भोजन न मिलने के कारण, भूखे ब्रिटिश और कंपनी की सेना में शामिल उतने ही भूखे भारतीय सैनिक उत्सुकता से नवगठित मराठा सेना को देख रहे थे, लेकिन जैसा कि विल्क्स ने कहा, 'मराठा सरदार की अपने ही शिविर में अद्वितीय व्यापारिक नीति का प्रदर्शन अत्यधिक कीमतें वसूलने में बखूबी हुआ।' ब्रिटिशों को कुछ राहत तब मिली जब उन्होंने देखा कि निज़ाम की सेना भी मराठा 'कठोर करों' से पीड़ित थी।

विल्क्स ने निज़ाम के 'शानदार' लेकिन सुस्त 'घुड़सवारों' की तुलना आम मराठा घुड़सवारों के 'साधारण रूप और काले दुबले-पतले चेहरे' से की, जो 'खुलेआम लूटपाट करते थे और देश के संसाधनों पर प्रभावी नियंत्रण रखते थे'। पीछे हटते अंग्रेजों द्वारा खाली किए गए क्षेत्रों में, मराठों ने 'पहने-पहनने की सबसे साधारण वस्तु तक' सब कुछ लूट लिया।

लेकिन कुछ प्रभावशाली विशेषताएं भी थीं। मराठा शिविर के एक बाज़ार में, उसके भूखे-प्यासे आगंतुकों ने, जिनमें विल्क्स भी शामिल थे, निम्नलिखित दृश्य देखे:

> पूर्व की लूट और पश्चिम का उद्योग: अंग्रेजी मोटा कपड़ा, बर्मिंघम का एक पेन-चाकू, कश्मीरी शॉल, हीरे, बैल, भेड़ और मुर्गी; सूखी नमकीन मछली; और मुद्रा विनिमय करने वालों की मेजें पूर्व के हर देश के सिक्कों से भरी हुई थीं, जो व्यवस्थित लुटेरों के समूह को छोड़कर किसी अन्य समूह में अकल्पनीय व्यापारिक गतिविधि का प्रमाण थीं।

ब्रिटिश सैनिकों के लिए खरीद के लिए वे चीजें भी उपलब्ध थीं, जिनका उत्पादन उनकी अपनी भारतीय राजधानियाँ उस समय यूरोपीय आयात के अलावा नहीं कर सकती थीं - उत्कृष्ट तलवार बेल्ट।

पीछे हटने के बाद के हफ्तों में, अंग्रेजों ने मैसूर की कई उपलब्धियों पर ध्यान दिया। बैंगलोर से लगभग 31 मील उत्तर में स्थित नंदीदुर्ग किले के बारे में विल्क्स ने लिखा:

> मैसूर में अंग्रेजों द्वारा अब तक देखे गए हर किलेबंद स्थान से टीपू सुल्तान द्वारा उसकी मरम्मत और सुधार पर दिए गए असाधारण ध्यान का प्रमाण मिलता था, लेकिन विशाल ऊंचाई वाली ग्रेनाइट चट्टान नंदीद्रूग के निर्माण

कार्य ने इसे अभेद्य बनाने के उनके इरादे को विशेष रूप से लीन कर दिया था।

विल्क्स ने अक्टूबर 1791 में कोयंबटूर-पालघाट क्षेत्र में टीपू के कमांडर कमरुद्दीन द्वारा अंग्रेजों से लड़ने में दिखाई गई 'नई ऊर्जा' और 'अत्यंत सम्मानजनक कौशल' का भी उल्लेख किया है।

~

टीपू के सबसे समृद्ध प्रांत बिदानूर में लूटपाट कर रही कुछ मराठा टुकड़ियों ने श्रीरंगपट्टनम से लगभग 75 मील उत्तर-पश्चिम में स्थित श्रींगेरी में स्थित प्राचीन हिंदू मठ को लूट लिया। यह मठ संभवतः नौवीं शताब्दी में स्थापित किया गया था। मठ को अपवित्र कर दिया गया, कई रक्षकों को मार डाला गया और लुटेरे लगभग साठ लाख रुपये नकद या आभूषणों के रूप में लूटकर ले गए।

मठ के प्रमुख, जो शंकराचार्यों की अटूट परंपरा के उत्तराधिकारी थे, ने टीपू से सहायता की अपील की, जिनका समर्थन स्पष्ट रूप से 1785 से मठ को प्राप्त होता रहा था।

वह अपील और टीपू की सकारात्मक प्रतिक्रिया, 1791 के एक अच्छी तरह से संरक्षित पत्राचार का हिस्सा हैं, जो फारसी में नहीं बल्कि कन्नड़ में किया गया था, और जो टीपू द्वारा मठ के समर्थन, बिदानूर के आसिफ या प्रांतीय गवर्नर को शंकराचार्य की मदद करने के निर्देश, प्राप्त सहायता और सुरक्षा के लिए शंकराचार्य की कृतज्ञता, और अपने क्षेत्र की रक्षा के लिए प्रयासरत टीपू के लिए शंकराचार्य के आशीर्वाद को प्रकट करता है।

~

विल्क्स का आरोप है कि अपनी राजधानी पर मंडरा रहे खतरे के कारण टीपू ने उन बीस अंग्रेज लड़कों को फांसी देने का आदेश दिया था जिन्हें हिरासत में लेकर 'हिंदूस्तानी नर्तकियों' की शैली में 'गायक और नर्तक' के रूप में प्रशिक्षित किया गया था। विल्क्स ने टीपू के आसपास के प्रमुख ब्राह्मणों का भी वर्णन किया है जिन पर राजद्रोह का आरोप लगाया गया और उन्हें फांसी दे दी गई।

कॉर्नवालिस के खुफिया प्रमुख, कैप्टन विलियम मैकलियोड द्वारा भर्ती किए गए एक अज्ञात भारतीय जासूस को टीपू के आदमियों ने पकड़ लिया। उन्हें जासूस की खोखली छड़ी में कन्नड़ भाषा में लिखा एक आपत्तिजनक पत्र मिला। कन्नड़ जानने

वाले एक मुस्लिम अधिकारी को पत्र की जांच करने का आदेश दिया गया, और लेखक की पहचान हो गई और उसे पकड़ लिया गया। वह एक ब्राह्मण था जिसका जबरन खतना किया गया और अब उसका नाम मोहम्मद अब्बास रखा गया।

पत्र में कोषाध्यक्ष किशन राव के भाई शेषगिरि राव का नाम था—यानी लंबे समय से सेवारत कृष्ण राव, जिन्होंने पूर्णिया को शुरुआती मौका दिया था। विल्क्स के अनुसार, न केवल शेषगिरि राव बल्कि कृष्ण राव और उनके दो अन्य भाइयों को भी 'गुप्त रूप से प्रताड़ित कर मार डाला गया'।

टीपू के पतन के बाद अपना विवरण लिखते हुए विल्क्स ने बताया कि चूंकि एक मुस्लिम ने उस आपत्तिजनक पत्र का निरीक्षण किया था, इसलिए कई ब्राह्मण अब भी इस धारणा में हैं कि कृष्णा राव और उनके भाइयों की 'किसी भी प्रकार के विश्वासघात' में कथित संलिप्तता एक 'झूठा आरोप' था, जिसे निरीक्षक के प्रभावशाली बहनोई 'सैयद साहब' ने कोषाध्यक्ष कृष्णा राव द्वारा पहले 'सैयद साहब' को मिलने वाले धन में की गई कटौती के प्रतिशोध में गढ़ा था। विल्क्स आगे लिखते हैं:

> अपने शासनकाल के उपायों की समीक्षा करते समय, सुल्तान के पास सभी ब्राह्मणों पर अविश्वास करने का उचित कारण था, और दक्षिण की भाषाओं के लिए उनके सभी सचिव भी ऐसे ही थे।

टीपू के पतन के बाद, विल्क्स ने दीवान पूर्णियाह, जिनके साथ उन्होंने घनिष्ठ रूप से काम किया था, के साथ कृष्ण राव के खिलाफ राजद्रोह के आरोप पर चर्चा की। वे लिखते हैं: 'मैं उनके सहयोगी पूर्णियाह से कभी भी इस बारे में राय नहीं ले सका।'

विल्क्स के अनुसार, अब्बास ने टीपू के समक्ष अपना अपराध स्वीकार किया, जिसके द्वारा उसे तलब किया गया था, लेकिन उसने दूसरों को फंसाने से इनकार कर दिया।

> “और कब से?” टीपू ने पूछा, “तुम देशद्रोही हो?” उसने उत्तर दिया, “जब से तुमने ब्राह्मणों का खतना करना और उनके कनपटी तोड़ना शुरू किया।”
>
> उसे हाथी के पैरों तले घसीटकर सार्वजनिक रूप से मौत की सजा दी गई।

विल्क्स ने चाहे जो भी सच बताया हो, उनकी कहानी से कुछ बातें स्पष्ट होती हैं। पहली बात, टीपू ने अपने पूरे शासनकाल में धन-संपत्ति के प्रबंधन के लिए ब्राह्मण अधिकारियों को नियुक्त किया। दूसरी बात, राजद्रोह की सज़ा बहुत कठोर थी। तीसरी बात, टीपू के पतन के कुछ वर्षों बाद जब विल्क्स अपना वृत्तांत लिख रहे थे, तब भी ब्राह्मण राजद्रोह के आरोप से नाराज़ थे: टीपू के प्रति वफ़ादारी उनके लिए अब भी

एक महत्वपूर्ण मूल्य था। चौथी बात, मुसलमानों और ब्राह्मणों के बीच शत्रुता भड़काना अंग्रेजों के हित में था। पाँचवीं बात, अठारहवीं शताब्दी के अंत में दक्षिण भारत के युद्धों में खुफिया जानकारी एक महत्वपूर्ण तत्व थी। और छठी बात, पूर्णिया, जो पहले एक पक्ष के साथ और फिर दूसरे पक्ष के साथ काम कर रहे थे, विल्क्स, जो एक उच्च स्तरीय शाही अधिकारी थे, के साथ पूरी तरह से गोपनीय रहे।

टीपू की मृत्यु के कुछ महीनों बाद मैसूर की यात्रा करते समय, फ्रांसिस बुकानन को बताया गया (उन्होंने यह नहीं बताया कि किसने बताया) कि टीपू ने एक बार पूर्णियाह से मुसलमान बनने के लिए कहा था। जाहिर तौर पर पूर्णियाह ने जवाब में केवल इतना कहा, 'मैं आपका दास हूँ,' और चले गए। इसके बाद टीपू की माँ सहित कई लोगों ने, जो 'एक बहुत ही सम्मानित महिला' थीं, टीपू से कहा कि उन्हें पूर्णियाह को अकेला छोड़ देना चाहिए। उन पर दबाव डालने से 'सब कुछ गड़बड़ हो जाएगा'। टीपू ने 'बहुत ही उचित तरीके से मामले को वहीं छोड़ दिया'।

उद्धृत शब्दों से ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्णियाह, जिनसे हम जानते हैं कि बुचानन ने श्रीरंगपट्टना में मुलाकात की थी, ने स्वयं यह कहानी सुनाई थी। 'अत्यंत सम्मानित महिला' वह व्यक्ति थीं जो पूर्णियाह को वर्षों से जानती और समझती थीं।

~

मई 1791 में अपनी वापसी के आठ महीने बाद, भोजन और चारे की आपूर्ति सुनिश्चित करने और जासूसों के अपने नेटवर्क को मजबूत करने के बाद, कॉर्नवालिस ने पूर्व से श्रीरंगपट्टनम पर फिर से हमला किया। पहले की तरह, एबरक्रॉम्बी दक्षिण-पश्चिम से आगे बढ़ा। इस आक्रमण में एक बार फिर मराठा भी शामिल हो गए, जिन्होंने इस अंतरिम काल का उपयोग उत्तरी मैसूर में क्षेत्र हासिल करने के लिए किया था, साथ ही निज़ाम की सेना भी।

इस बार टीपू अपने असंख्य शत्रुओं के एकत्रीकरण को रोकने में असमर्थ रहे। श्रीरंगपट्टनम के बाहर विशाल सेना का सामना करते हुए, उन्होंने अप्रत्याशित रूप से तोपों की बौछार कर दी, जिससे घेराबंदी करने वाले सैनिक पहले तो विचलित हो गए, लेकिन अंततः उन्होंने सफलतापूर्वक घेराबंदी कर ली। विल्क्स ने स्वीकार किया कि घेराबंदी के लिए लकड़ी जुटाने हेतु, बैंगलोर में स्थित लालबाग का विशाल और सुंदर उद्यान, जिसमें हर प्रकार के वृक्ष थे और जो मैसूर की उपज के लिए एक शाही नर्सरी के समान था, काट दिया गया था।

ये रॉकेट लोहे की नलियाँ थीं, जो एक फुट लंबी और एक इंच व्यास की थीं, बारूद से भरी हुई थीं और बांस की छड़ियों से जुड़ी हुई थीं... इन नलियों को निशाना बनाकर जलाया जाता था और आग के तीरों की तरह एक हजार गज तक की दूरी तक दागा जाता था। कहा जाता है कि ये शोर मचाने वाले मिसाइल जमीन पर रेंगते और लहराते हुए आगे बढ़ते थे, कुछ बमों की तरह फटते थे, जिससे विरोधी सेना के घुड़सवारों में दहशत फैल जाती थी।

अपने दो अंग्रेज कैदियों को रिहा करके, टीपू ने उनके साथ शांति वार्ता का प्रस्ताव भेजा। जल्द ही जो सेरिंगापट्टम संधि हुई, उसमें एक मध्ययुगीन तत्व शामिल था जिस पर अंग्रेजों ने जोर दिया था। टीपू को न केवल अपने संघ को अपनी आधी भूमि और तीन करोड़ तीस लाख रुपये हर्जाने के रूप में देने थे, बल्कि उन्हें अपने दो बेटों को कॉर्नवालिस को बंधक के रूप में सौंपना था, जिन्हें हर्जाना पूरी तरह चुकाए जाने पर वापस लौटाया जाना था।

23 फरवरी 1792 को टीपू ने अपनी राजधानी की मुख्य मस्जिद में अपनी सेना के सभी प्रमुख अधिकारियों को इकट्ठा किया और उनसे शांति की शर्तों पर कुरान पर शपथ लेकर स्पष्ट राय मांगी। विल्क्स लिखते हैं कि 'बाद में उस सभा के कुछ ही सदस्य बिना आंसू बहाए उसकी घटनाओं का वर्णन कर पाते थे।'

टीपू द्वारा शर्तों पर सहमति प्राप्त करने के बाद, 26 फरवरी को लड़कों को सौंप दिया गया। एक गंभीर समारोह में, दोनों पक्षों ने तोपों की सलामी दी और लॉर्ड कॉर्नवालिस ने दस वर्षीय अब्दुल खालिक और आठ वर्षीय मोइज़ुद्दीन नामक पूर्वी राजकुमारों को अपने कब्जे में ले लिया।

वहाँ मौजूद एक स्कॉटिश व्यक्ति, रॉबर्ट होम ने उस दृश्य को भविष्य के लिए चित्रित किया। लड़कों को कंपनी के सुरक्षित किले वेल्लोर ले जाया गया, जहाँ लेफ्टिनेंट थॉमस मुनरो (वही व्यक्ति जिसने टीपू को भारत में ब्रिटेन का पहला दुश्मन कहा था) सुरक्षा दल का नेतृत्व कर रहे थे, और फिर उन्हें फोर्ट सेंट जॉर्ज ले जाया गया।

मराठों और निज़ामों ने टीपू के राज्य से बड़े भूभाग प्राप्त कर लिए, वहीं ईस्ट इंडिया कंपनी ने पश्चिम में मालाबार, उत्तर में बेल्लारी और अनंतपुर तथा दक्षिण में सलेम और दिंडीगुल को अपने अधीन कर लिया और इन समृद्ध जिलों को मद्रास प्रेसीडेंसी में मिला लिया। टीपू ने कूर्ग भी खो दिया, जो कंपनी के अधीन हो गया।

~

जोसेफ मिचौड, एक फ्रांसीसी नागरिक जो टीपू के पतन से पहले और बाद में श्रीरंगपट्टनम से परिचित थे, ने लिखा:

> सेरिंगापट्टम शहर हिंदुस्तान के सबसे महत्वपूर्ण शहरों में से एक बन गया था। यह जिस द्वीप पर स्थित है, वह साढ़े तीन मील लंबा और लगभग डेढ़ मील चौड़ा है। यह कावेरी नदी के मध्य में एक ऊँचाई तक फैला हुआ है और नदी के किनारे की ओर तेजी से ढलान बनाता है। किला द्वीप के पश्चिमी छोर से एक हजार फैदम की दूरी तक फैला हुआ है। नदी इसे उत्तर और पश्चिम दोनों ओर से घेरे हुए है।

1792 की हार के बाद, राजधानी को प्राचीरों, खाईयों और खाइयों से मजबूत किया गया, जिसमें फ्रांसीसियों ने भी सहायता की। मिचौड के अनुसार:

> शांति काल में यह नगर अत्यंत समृद्ध था। टीपू सुल्तान ने पोलिगारों के पुत्रों को उनकी वफादारी के प्रमाण के रूप में अपने दरबार में रखा था [यह एक बार फिर मध्ययुगीन तत्व है]। इसी कारण यह नगर मैसूर और कनारा के सबसे प्रतिष्ठित और धनी परिवारों का निवास स्थान बन गया... नगर में स्वर्ण शिल्प, आभूषण और घड़ी निर्माण में उल्लेखनीय प्रगति हुई...
>
> हैदर अली और टीपू साहब के शासनकाल में जनसंख्या में काफी वृद्धि हुई। बड़ी संख्या में फ्रांसीसी राजधानी में बस गए थे, जिनमें से अधिकांश अंग्रेजों द्वारा विजय प्राप्त करने के बाद भी वहीं रहे... और घड़ी बनाने और सोने के काम जैसे यांत्रिक व्यवसायों में लगे रहे। टीपू साहब को तोप बनाने का काम सबसे अधिक पसंद था।
>
> लेकिन केवल मुस्लिम धर्म को ही अत्यधिक प्रमुखता और लोकप्रियता प्राप्त हुई।

सन् 1800 में विद्वान-यात्री फ्रांसिस बुकानन द्वारा संकलित नोट्स से हमें टीपू के प्रशासन की अतिरिक्त जानकारी मिलती है:

> आम जनता टीपू पर कट्टरता और घमंड का आरोप लगाती है; लेकिन वे अपनी अधिकांश परेशानियों का कारण उनके मंत्री मीर सदूक के प्रभाव को मानते हैं, जो लालच और क्रूरता का प्रतीक था। ब्राह्मण, जो पूरे राजस्व विभाग का प्रबंधन करते थे, इतने लालची, भ्रष्ट और हैदर के प्रति इतने कृतघ्न थे कि अगर टीपू उनकी सेवाओं के बिना काम चला सकते तो वे उन्हें पूरी

> तरह से हटा देते; लेकिन यह असंभव था, क्योंकि देश में किसी और को राजस्व विभाग की जानकारी नहीं थी।

मैसूरवासियों ने बुकानन को बताया कि टीपू ने अपने ब्राह्मण नौकरशाहों का निरीक्षण करने या उन्हें आकर्षक वेतन देने के बजाय, देश के बड़े-बड़े विभागों की देखरेख के लिए मुस्लिम आसिफों को लॉर्ड लेफ्टिनेंट नियुक्त कर दिया था; और इससे बुराई बहुत बढ़ गई थी। ये रईस ब्राह्मण नौकरशाहों से रिश्वत लेते थे, जिसके परिणामस्वरूप ब्राह्मण नौकरशाह जनता से सामान्य रिश्वत से दुगुनी रिश्वत की मांग करते थे।
श्रीरंगपट्टना के बारे में, बुकानन ने लिखा था:

> लाउल बाग स्थित महल अत्यंत भव्य है और यह मेरे द्वारा देखे गए सबसे खूबसूरत देशी भवनों में से एक है।

राजधानी के एक अन्य महल की दीवारों पर, बुकानन ने टीपू द्वारा अधिग्रहित चित्र देखे, जिनमें से एक में हैदर और टीपू को जुलूस में दिखाया गया था और दूसरे में कर्नल बैली की 1782 की पराजय को दर्शाया गया था। पैनलों में मैसूर के कुछ जातीय समूहों को चित्रित किया गया था। इन्हीं पैनलों में से एक से लिया गया और बुकानन की पुस्तक में प्रकाशित एक रोचक चित्र में एक अज्ञात ब्राह्मण को उसकी पत्नी और पुत्र के साथ दिखाया गया है। कलाकार का नाम भी नहीं दिया गया है।

~

जनवरी 2017 में श्रीरंगपट्टनम की यात्रा से पता चला कि बुकानन द्वारा प्रशंसित लाल महल महल बहुत पहले ही नष्ट हो चुका था, इसकी क्षतिग्रस्त दीवारों को जाहिरा तौर पर अंग्रेजों ने 1807 में ध्वस्त कर दिया था। श्री रंगनाथस्वामी का प्राचीन मंदिर, जिसे स्पष्ट रूप से टीपू द्वारा संरक्षित किया गया था, नवरंजित था और भक्तों से भरा हुआ था, जबकि टीपू के निवास स्थान के ठीक बगल में दो समान रूप से प्राचीन मंदिर स्थित थे, एक का नाम शिव के गंगा ऋषि रूप के नाम पर और दूसरे का नाम विष्णु के आधे मनुष्य-आधे सिंह अवतार नरसिम्हा के नाम पर रखा गया था।
बुचानन द्वारा देखे गए पैनलों वाले महल (जिसे अब 'ग्रीष्मकालीन महल' कहा जाता है) में आज भी कई अक्षुण्ण भित्तिचित्र टंगे हुए हैं, जिनमें 1734 से 1766 तक मैसूर के नाममात्र शासक कृष्णराज वाडियार द्वितीय, उस काल के कूर्ग, चित्रदुर्ग और बनारस के हिंदू राजा, मराठा पेशवा बालाजी बाजी राव द्वितीय, आर्कोट के मुस्लिम नवाब और

सोलहवीं शताब्दी में बैंगलोर की स्थापना करने वाले विजयनगर के सामंत केम्पे गौड़ा प्रथम के चित्र शामिल हैं।
पूर्णियाह (या पूर्णैया) गली कहलाने वाली एक सड़क पर ऐसे घर हुआ करते थे, जहाँ ऐसा लगता है कि केवल ब्राह्मण ही रहते थे। जाहिर है, टीपू के समय में भी इस गली में केवल ब्राह्मण ही रहते थे। यदि, जैसा कि संभव प्रतीत होता है, पूर्णियाह भी वहाँ रहते थे, तो उनके लिए घर से टीपू के महल तक गाड़ी से जाना एक छोटी दूरी का सफर रहा होगा।

~

कॉर्नवालिस के साथ संधि के बाद छह वर्षों की शांति के दौरान, टीपू ने अपनी राजधानी को मजबूत किया, अपनी घुड़सवार सेना को पुनः सुसज्जित किया, अपनी पैदल सेना का विस्तार और अनुशासन बढ़ाया, विद्रोही पोलिगारों को दबाया और खेती को प्रोत्साहित किया। कंपनी पर लगाया गया भारी जुर्माना अदा कर दिया गया और उसने अपने बेटों को वापस पा लिया। लेकिन 1792 के अपमान का बदला नहीं लिया जा सका।
मराठा साम्राज्य, जिसके उदय से अंग्रेजों को डर था, विघटन की ओर अग्रसर था, यद्यपि उनके सरदारों में से एक, दौलत राव सिंधिया, मुगल सिंहासन के कमजोर शासक शाह आलम द्वितीय पर अपना नियंत्रण बनाए हुए प्रतीत होता था। हैदराबाद में भी अव्यवस्था व्याप्त थी, और वहाँ एक समूह ने शांति का लाभ उठाकर अपना प्रभाव बढ़ाया। केवल मैसूर ही कुशल प्रतीत होता था, यद्यपि उसने अपना आधा क्षेत्र और अधिकांश खजाना खो दिया था।
मैसूर की ऊर्जा से चिंतित होकर, लंदन ने 1797 में अधिक विस्तारवादी भारत नीति के लिए दबाव डाला, और रिचर्ड वेलेस्ली, अर्ल ऑफ मॉर्निंगटन, जो एक 'कट्टर साम्राज्यवादी' थे और फ्रांस और उसके कट्टरपंथी जैकोबिनों को नापसंद करते थे, को गवर्नर जनरल नियुक्त किया गया।
उसी वर्ष की शुरुआत में, मंगलुरु बंदरगाह, जो टीपू के अधीन रहा था, पर एक फ्रांसीसी अधिकारी, फ्रांकोइस रिपाउड के नेतृत्व में एक छोटा जहाज उतरा। खुद को जैकोबिन और फ्रांसीसी नौसेना का अधिकारी बताते हुए, रिपाउड श्रीरंगपट्टनम गया, जहाँ उसने टीपू को बताया कि एक एडमिरल और एक जनरल के नेतृत्व में 10,000 फ्रांसीसी सैनिक हिंद महासागर के मॉरीशस (तब 'आइल ऑफ फ्रांस') और

रीयूनियन (तब 'बोर्बन') द्वीपों पर पहुँच गए हैं; रिपाउड ने आगे कहा कि फ्रांसीसी चाहते हैं कि टीपू इस सेना का उपयोग करके अंग्रेजों को उखाड़ फेंके।
शायद बदला लेने की तीव्र इच्छा के कारण, और शायद विल्क्स के तर्क के अनुसार, लोगों को परखने में असमर्थ होने के कारण भी, टीपू ने इस कहानी पर विश्वास कर लिया। मई 1797 में, रिपौड और उनके जैकोबिन साथियों का श्रीरंगपट्टनम में आयोजित एक समारोह में टीपू की उपस्थिति में सार्वजनिक रूप से स्वागत किया गया, जहाँ टीपू को छोड़कर सभी राजाओं के विरोध की घोषणा की गई, जिन्हें 'नागरिक राजकुमार' के रूप में सम्मानित किया गया।
टीपू ने दो अधिकारियों को रिपौद के साथ मॉरीशस जाने के लिए कहा। 19 जनवरी 1798 को पोर्ट लुई पहुंचने पर, उनका स्वागत फ्रांस के गवर्नर जनरल जनरल मलार्टिक ने किया, लेकिन वहां 10,000 फ्रांसीसी सैनिकों का कोई नामोनिशान नहीं था।
निडर होकर, टीपू के आदमियों ने पोर्ट लुई में फ्रांस के साथ एक संधि का प्रस्ताव रखा, जिसके तहत फ्रांसीसी टीपू को हजारों सैनिक प्रदान करेंगे, जिनका खर्च वह स्वयं वहन करेगा, और दूसरा, एक बार सभी अंग्रेजी सैनिकों को हटा दिए जाने के बाद, भारत में क्षेत्रों को टीपू और फ्रांसीसियों के बीच समान रूप से विभाजित किया जाएगा।
30 जनवरी 1798 को, मलार्टिक ने एक घोषणा जारी की जिसमें कहा गया कि टीपू भारत से अंग्रेजों को निकालने के लिए एक संधि चाहते हैं, और मैसूर फ्रांसीसी सैनिकों की देखभाल करेगा (हालांकि, उन्हें शराब नहीं पिलाई जाएगी)। टीपू की सेवा में भर्ती होकर, कई दर्जन फ्रांसीसी सैनिक रिपौड और दो मैसूरीवासियों के साथ एक फ्रांसीसी फ्रिगेट, ला प्रेन्यूज़ पर सवार हुए, जो अप्रैल के अंत तक दल को मालाबार तट पर वापस ले आया।
टीपू को लगता था कि अंग्रेजों को इन सार्वजनिक कृत्यों की भनक नहीं लगेगी। लेकिन कंपनी के एजेंट सोए नहीं थे, और भारत में उनके नव नियुक्त प्रमुख कार्रवाई करने के लिए उत्सुक थे।
जिस दिन फ्रांसीसी फ्रिगेट मंगलुरु में उतरा, उसी दिन इंग्लैंड से आ रहा मॉर्निंगटन जहाज मद्रास पहुंचा। कुछ दिनों बाद कलकत्ता पहुंचकर उसे पोर्ट लुई की घोषणा की सूचना मिली। इसके बाद पहले केप ऑफ गुड होप के ब्रिटिश गवर्नर ने इस बात की

पुष्टि की कि रिपोर्ट प्रामाणिक है, और फिर एक जहाज के कप्तान ने गवर्नर जनरल के समक्ष गवाही दी कि घोषणा के समय वह पोर्ट लुई में तट पर मौजूद था।
सन् 1798 में नेपोलियन ने पूर्व की ओर बढ़ते हुए, कभी न खत्म होने वाली एंग्लो-फ्रेंच प्रतिद्वंद्विता को और भी तीव्र कर दिया। मई में नेपोलियन मिस्र में था। जुलाई में उसने काहिरा पर कब्जा कर लिया। लेकिन अगस्त में नील नदी की लड़ाई में अंग्रेजी नौसेना ने उसे हरा दिया।

~

भारत पहुँचते ही, उस अंतिम परिणाम की खबर ने कलकत्ता के नए गवर्नर जनरल और उनके तीस वर्षीय छोटे भाई, कर्नल आर्थर वेलेस्ली, जो भविष्य में वाटरलू में नेपोलियन पर विजय प्राप्त करने वाले थे, के मन में आत्मविश्वास भर दिया। नेपोलियन अपने बड़े भाई से एक साल पहले भारत आया था।
इस भरोसे की सख्त जरूरत थी। क्योंकि अपने जासूसों के जरिए अंग्रेजों को पता चला था कि नेपोलियन ने पेरिस में अभी भी सत्ता में काबिज कट्टरपंथियों को आश्वासन दिया था कि 'जैसे ही वह मिस्र पर विजय प्राप्त कर लेगा, वह भारतीय राजकुमारों के साथ संबंध स्थापित करेगा और उनके साथ मिलकर अंग्रेजों पर उनके [भारतीय] क्षेत्रों में हमला करेगा'।
नेपोलियन ने अपने मित्र, रियर एडमिरल चार्ल्स मैगन से स्पष्ट रूप से कहा था, 'बस यही है! हमें भारत में ही अंग्रेजी शक्ति पर हमला करना होगा।'
और फ्रांस के विदेश मंत्री चार्ल्स टैलीरैंड ने 13 फरवरी 1798 को दावा किया था: 'मिस्र पर कब्जा करने और उसे मजबूत बनाने के बाद, हम स्वेज से 15,000 सैनिकों की एक टुकड़ी भारत भेजेंगे, ताकि टीपू साहब की सेनाओं में शामिल होकर अंग्रेजों को खदेड़ सकें।'
मॉर्निंगटन ने तुरंत सैन्य, कूटनीतिक और राजनीतिक कदम उठाए। मद्रास और बंबई को दोनों तटों पर चुपचाप सेनाएँ जुटाने के लिए कहते हुए, उन्होंने टीपू को लंबे, टालमटोल भरे पत्र भी भेजे जिनमें इस बात का कोई संकेत नहीं था कि उन्हें टीपू की मॉरीशस घोषणा या नेपोलियन की उम्मीदों की जानकारी थी।
गवर्नर जनरल ने हैदराबाद की ओर भी ध्यान दिया, जहाँ मिशेल रेमंड के नेतृत्व में, कट्टरपंथी जैकोबिन सहित 124 फ्रांसीसी अधिकारियों ने निज़ाम के 14,000 सैनिकों

पर अपना दबदबा कायम कर लिया था। मद्रास से कर्नल रॉबर्ट्स के नेतृत्व में एक सेना को 'गुप्त रूप से लेकिन शीघ्रता से हैदराबाद भेजा गया'।
10 अक्टूबर को वहाँ पहुँचकर, रॉबर्ट्स और उनके साथियों ने बारह दिन बाद बिना एक भी गोली चलाए सभी फ्रांसीसियों का आत्मसमर्पण करवा लिया। ब्रिटिशों के लिए सौभाग्य की बात यह थी कि आत्मसमर्पण से ठीक पहले उसी वर्ष रेमंड की अचानक मृत्यु हो गई थी।
निज़ाम ने न केवल इस आत्मसमर्पण को स्वीकार किया, बल्कि संधि के तहत हैदराबाद में अपने खर्च पर 6,000 तोपखाने से लैस अंग्रेज़ सिपाहियों को रखने और इसके अलावा अंग्रेजों को 14 लाख से अधिक की वार्षिक सब्सिडी देने पर भी सहमति जताई! निज़ाम भविष्य के शत्रुओं से सुरक्षा और जैकोबिन प्रभाव को समाप्त करने के लिए भुगतान क्यों नहीं करता?
गठबंधन को पुख्ता करने के लिए, मॉर्निंगटन ने निज़ाम को मराठों के किसी भी नए हमले से बचाने की पेशकश की, जिनके हाथों हैदराबाद को 1795 में एक बड़ी हार का सामना करना पड़ा था, बशर्ते फ्रांसीसी-प्रशिक्षित सेना को भंग कर दिया जाए।
शर्तों को स्वीकार करते हुए, निज़ाम संभवतः पहली 'प्रमुख भारतीय शक्ति' बन गया जिसने 'निश्चित रूप से ब्रिटिश गठबंधन पर भरोसा करने का फैसला किया था और अच्छे या बुरे के लिए उनके साथ जुड़ने और उनकी सलाह मानने का संकल्प लिया था'।
जबकि 124 फ्रांसीसियों को युद्धबंदी के रूप में यूरोप भेज दिया गया, गवर्नर जनरल के भाई आर्थर को हैदराबाद भेज दिया गया ताकि वह वहां मौजूद ब्रिटिश सैनिकों का नेतृत्व कर सकें जो मैसूर में मार्च करने के आदेश की प्रतीक्षा कर रहे थे।
पश्चिम में, पुणे में, मराठा साम्राज्य के नाममात्र प्रमुख पेशवा के साथ एक संधि भी की गई, जिसने उस प्रमुख की तटस्थता सुनिश्चित की। पेशवा के प्रतिद्वंद्वी दौलत राव सिंधिया, जिन्होंने संक्षेप में टीपू का समर्थन करने का विचार किया था, को धमकी दी गई कि अंग्रेज उन्हें पहले ही खत्म कर देंगे। मॉर्निंगटन ने ट्रांकेबार की डेनिश बस्ती को भी निष्क्रिय कर दिया, जहाँ टीपू को फ्रांसीसी सहयोगी मिले थे।
25 दिसंबर 1798 को, नवंबर में मॉर्निंगटन द्वारा भेजे गए दो पत्रों के जवाब में टीपू का पत्र फोर्ट सेंट जॉर्ज पहुंचा। टीपू ने दावा किया कि नील नदी के युद्ध में नेपोलियन की पराजय की खबर ने उन्हें 'लिखकर व्यक्त की जा सकने वाली खुशी से कहीं अधिक

आनंद' दिया है। उन्होंने आगे इच्छा व्यक्त की कि 'फ्रांसीसी, जो कुटिल स्वभाव के, विश्वासघाती और मानवता के शत्रु हैं, हमेशा के लिए पराजित और बर्बाद हो जाएं'। जो कुछ मॉर्निंगटन को पता था, उसे देखते हुए टीपू के ये वाक्य उसे प्रभावित नहीं कर सकते थे।

टीपू जलप्रपात

4 मई 1799 को सेरिंगापट्टम का पतन एक बहुत बड़ी साम्राज्यवादी घटना थी, जिसे नेपोलियन की 1815 में हुई पराजय भी कुछ हद तक फीका नहीं कर सकी। इसके कई वर्षों बाद तक, ब्रिटिश उपन्यासकार (जिनमें वाल्टर स्कॉट भी शामिल थे) और कलाकार कोर्सीका और मैसूर की इस घटना की तुलना करते रहे। इस पतन से पहले हुई घेराबंदी के बारे में, एक प्रतिभागी, अलेक्जेंडर बीटसन ने लिखा, 'भारत में ब्रिटिश राष्ट्र के सैन्य अभियानों के इतिहास में दर्ज किसी भी घटना ने अपनी भव्यता में इसका कोई सानी नहीं देखी।'

फरवरी तक, जब मॉर्निंगटन ने हमले का आदेश दिया, तब तक इसे अंजाम देने के लिए लगभग 50,000 सैनिकों को इकट्ठा किया जा चुका था, जिनमें से अधिकांश फोर्ट सेंट जॉर्ज (श्रीरंगपट्टनम से लगभग 350 मील दूर) या मैसूर की दक्षिणी सीमाओं के पास (टीपू की राजधानी से लगभग 130 मील दूर) तैनात थे।

जनरल जॉर्ज हैरिस के नेतृत्व में इस सेना में मद्रास, बंगाल और बॉम्बे से कंपनी की इकाइयाँ, आर्थर वेलेस्ली के नेतृत्व में हैदराबाद से एक टुकड़ी और निज़ाम द्वारा भेजी गई एक अन्य टुकड़ी शामिल थी। इस सेना में लगभग 4,000 सैनिक श्वेत थे, जिनमें से कुछ दर्जन स्विस भाड़े के सैनिकों को छोड़कर बाकी सभी ब्रिटिश थे। शेष, जिनमें से अधिकांश देशी सिपाही थे।

असंख्य हाथियों, ऊंटों और बैलों की विशाल सेना के साथ, सैनिक बड़ी और छोटी तोपों, दीवारों को भेदने के लिए तोपखाने और उन पर चढ़ने के लिए सीढ़ियों के साथ आगे बढ़े। आठ साल पहले कॉर्नवॉलिस को पीछे हटने के लिए मजबूर करने वाली भुखमरी को दोबारा होने नहीं दिया गया। लंबी यात्रा के दौरान पुरुषों और जानवरों को भोजन दिया गया, और घेराबंदी को बनाए रखने के लिए भोजन बचाकर रखा गया।

मार्च करने वाले दल में 'अधिकारियों के लिए मांस उपलब्ध कराने के लिए भेड़-बकरियों के झुंड, साथ ही बड़ी संख्या में शिविर के अनुयायी और सैनिकों के लिए

भोजन और पेय बेचने वाला एक चलता-फिरता बाजार' शामिल था। इतिहासकार रिचर्ड कैवेंडिश आगे कहते हैं:

> अधिकारी अपने साथ रसोइये, घोड़ों की देखभाल करने वाले, कपड़े धोने वाले और सफाई करने वाले नौकर ले गए थे, और वेलेस्ली जैसे वरिष्ठ अधिकारी, जो अपने चांदी के बर्तन भी साथ लाए थे, उनके साथ तीस या उससे अधिक नौकर थे। चिलचिलाती गर्मी में भारी गति से आगे बढ़ते हुए, सेना ने अठारह वर्ग मील के क्षेत्र को कवर किया और अच्छे दिनों में दस मील तक ही आगे बढ़ पाई।

औपनिवेशिक काल की एक उत्कृष्ट कृति, यह अभियान अप्रैल के पहले सप्ताह में श्रीरंगपट्टना पहुंचा और शहर को घेर लिया। हालांकि किले के अंदर टीपू के पास लगभग 30,000 सैनिक थे, लेकिन अंग्रेजों ने पहले ही आधी लड़ाई जीत ली थी।

टीपू के लिए स्थिति और भी बदतर हो गई क्योंकि श्रीरंगपट्टनम की रक्षा करने वाली कावेरी नदी लगभग पूरी तरह से सूख चुकी थी: लोग उस पर चल या दौड़ भी सकते थे। बारिश की उम्मीद में हमले को टालने के लिए, टीपू ने ब्रिटिश कमांडरों को वार्ता का प्रस्ताव देते हुए संदेश भेजे, लेकिन यह चाल स्पष्ट थी और प्रस्ताव को ठुकरा दिया गया।

टीपू की राजधानी में माहौल अच्छा नहीं था। कई निवासी टीपू के मुख्य दीवान मीर सादिक को भ्रष्ट और जबरन वसूली करने वाला मानते थे, कुछ तो उन्हें गद्दार समझते थे। पूर्णिया के पास एक बड़ी सेना (4,000 से अधिक सैनिकों की) थी, जैसा कि टीपू के बेटे फतेह हैदर और कमरुद्दीन खान के पास भी था, लेकिन हमले की प्रतीक्षा करने के अलावा वे केवल दूर स्थित दुश्मन पर अंधाधुंध तोपें दाग सकते थे।

5 अप्रैल को, आर्थर वेलेस्ली के नेतृत्व में सुल्तानपेट्टा नामक गाँव पर हुए रात्रि आक्रमण को रक्षकों ने सफलतापूर्वक विफल कर दिया। इस आक्रमण में पच्चीस ब्रिटिश सैनिक हताहत हुए; वेलेस्ली स्वयं घुटने में घायल हो गए और लगभग बंदी बना लिए गए थे। हालाँकि, अगले दिन, ब्रिटिश सेना ने आसानी से गाँव पर कब्ज़ा कर लिया।

फ्रांसीसी इतिहासकार मिचौड ने लिखा है कि 'अंग्रेज़ी और मैसूरी तोपखाने की गड़गड़ाहट रात के सन्नाटे में भी तट से तट तक भयानक शोर मचाती रही; और बारूदी सुरंगों के विस्फोट से क्षितिज पर एक डरावनी रोशनी फैल गई'। उन्होंने इस

रात्रिकालीन दृश्य की भव्य भयावहता का वर्णन किया है। उनके अनुसार, 'घेराबंदी के दौरान टीपू साहब ने अद्वितीय शौर्य और वीरता का प्रदर्शन किया'।
अगर हैरिस और देर करता, तो उसकी सेना का भोजन भंडार खतरनाक रूप से कम हो जाता, लेकिन वह अपने सैनिकों को आक्रमण का आदेश देने से पहले किले की दीवारों में एक उचित दरार चाहता था। 28 अप्रैल और फिर 2 मई को, हमलावरों की तोपों ने किले की दीवारों में दरारें पैदा कर दीं। निज़ाम के सैनिकों द्वारा बनाई गई दूसरी दरार को नए सिरे से गोलाबारी करके चौड़ा कर दिया गया, और 3 मई की रात को, हैरिस ने अगले दिन उस दरार से धावा बोलने का फैसला किया—'दिन के मध्य में, जब सूरज अपने चरम पर था, और टीपू और उसकी सेना विश्राम कर रहे थे'।
डेविड बेयर्ड, जो कभी टीपू के कैदी थे (1782 में ब्रेथवेट पर उनकी जीत के बाद) और अब मेजर जनरल थे, को हैरिस ने हमले का नेतृत्व करने के लिए कहा। 4 तारीख को दोपहर 1 बजे, 'यूरोपीय सैनिकों को एक पैग व्हिस्की और एक बिस्किट दिया गया [सेना में भारतीय इस सुविधा के हकदार नहीं थे], जिसके बाद बेयर्ड ने हमले का संकेत देने के लिए अपनी तलवार निकाली।'
स्पष्टतः, 'जब आक्रमणकारी दल कावेरी नदी पार कर गया तो खाइयों में जयकारे गूंज उठे। 16 मिनट के भीतर, उन्होंने नदी पार कर ली...और...टीपू की तोपों की भारी गोलाबारी के बीच किले की दीवारों पर चढ़ गए।'
एक साल बाद, अप्रैल 1800 में, रॉबर्ट केर पोर्टर नामक एक युवा कलाकार द्वारा बनाई गई 'सेरिंगापट्टम पर आक्रमण' को दर्शाने वाली एक विशाल पेंटिंग, जो 21 फीट ऊंची और 120 फीट लंबी थी, लंदन में प्रदर्शित की गई, जिसे देखने के लिए अगले नौ महीनों में लंदनवासी उमड़ पड़े।
उस दिन श्रीरंगपट्टनम में कई लोग मारे गए, अंग्रेजों की तरफ से सैकड़ों और टीपू की तरफ से हजारों, क्योंकि रक्षा करने वाले साहसी और निडर थे, और हमलावर भी दुस्साहसी थे। विजयी पक्ष द्वारा अगले अड़तालीस घंटों में हुए दंगों ने भारी तबाही मचाई, जबकि श्रीरंगपट्टनम के कुछ लोगों ने क्रोधित होकर मीर सादिक की हत्या कर दी। हार के बाद, विश्वासघात की पुष्टि करते हुए, निज़ाम ने हैदराबाद में उनकी जागीर को ज़मीन दी।
उस सुबह, जब हर तरफ अँधेरे दिख रहे थे, टीपू ने अपने शहर के विष्णु मंदिर के ब्राह्मण पुजारियों को उपहार दिए और उनसे अपने लिए प्रार्थना करने को कहा।

दोपहर में, उन्होंने हमलावरों का डटकर सामना किया और घोड़े पर सवार होकर लगातार गोलीबारी करते रहे। जब उन्हें स्वयं गोली लगी, तो उनके सहायकों ने उन्हें पालकी में लिटाया और उतारने की कोशिश की, लेकिन एक अज्ञात ब्रिटिश सैनिक ने टीपू को मार डाला, शायद उनकी पहचान जानने से ज़्यादा उनकी रत्नजड़ित तलवार के लिए।

टीपू का शव अन्य शवों के ढेर में गिर गया। उसकी पहचान कैसे हुई, इसका वर्णन 24 अगस्त 1799 के बॉम्बे कूरियर में प्रकाशित 'सेरिंगापट्टम शिविर से एक पत्र के अंश' में किया गया है।

> शाम ढलने के समय, जनरल बेयर्ड, महल में मिली सूचना के आधार पर, किले के किलादार और अन्य लोगों के साथ रोशनी लेकर सुल्तान के शव की तलाश में द्वार पर आए, और बहुत मेहनत के बाद शव मिला और उसे मृतकों के ढेर के नीचे से निकालकर द्वार के अंदर लाया गया।
>
> चेहरे पर किसी भी तरह की विकृति नहीं थी, बल्कि उस पर गंभीर संयम का भाव था; उसकी पगड़ी, जैकेट और तलवार की बेल्ट गायब थी, लेकिन वहां मौजूद उसके कुछ लोगों ने उसके शरीर को पैडशॉ के रूप में पहचान लिया।
>
> जनरल बेयर्ड की अनुमति से उपस्थित एक अधिकारी ने अपने दाहिने हाथ से ताबीज निकाला, जिसमें महीन फूलों वाले रेशम के टुकड़ों में सिला हुआ, चांदी के रंग के एक भंगुर धातु पदार्थ का ताबीज और अरबी और फारसी अक्षरों में कुछ पांडुलिपियां थीं जो सुल्तान के शरीर की पहचान की पुष्टि करती थीं।
>
> शव को उनकी अपनी पालकी पर रखा गया और जनरल बेयर्ड के आदेशानुसार महल के प्रांगण में ले जाया गया, जहां वह रात भर रहा।

मेजर एलन, जिन्होंने 4 तारीख की शाम को टीपू के शव का भी सामना किया था, ने लिखा:

> जब टीपू को फाटक के नीचे से निकाला गया, तो उसकी आँखें खुली थीं और शरीर इतना गर्म था कि कुछ क्षणों के लिए कर्नल वेलेस्ली और मुझे संदेह हुआ कि कहीं वह जीवित तो नहीं है; उसकी नब्ज़ और हृदय की धड़कन

महसूस करने पर सारा संदेह दूर हो गया... उसका सिर खुला हुआ था, गिरने की अफरा-तफरी में उसकी पगड़ी कहीं खो गई थी...

उनके चेहरे पर गरिमा या शायद कठोरता का भाव था, जो उन्हें आम लोगों से ऊपर दर्शाता था।

घटनास्थल के पास ही अलेक्जेंडर बीटसन भी मौजूद थे, जिनके द्वारा टीपू के पतन का वर्णन सबसे पहले प्रसारित हुआ था। उनके अनुसार, 'सुल्तान को दाहिने कान के ठीक ऊपर एक बंदूक की गोली लगी थी, जो उनके बाएं गाल पर मुंह के पास जा फंसी थी; उनके दाहिने हिस्से में भी तीन घाव थे, जो जाहिर तौर पर संगीन से किए गए थे।'

टीपू सुल्तान मैसूर राज्य के एक करिश्माई शासक थे, जिन्होंने अपने पिता हैदर अली के बाद सिंहासन संभाला। टीपू का जन्म 1750 में हुआ था और उनकी मृत्यु 1799 में हुई। यह अंश 'मॉडर्न साउथ इंडिया' से लिया गया है।

आठ

~

अंतिम मुगल *

विलियम डेलरिम्पल

2 अप्रैल 1852 की भीषण गर्मी की रात को, राजकुमार जवान बख्त का विवाह जुलूस रात 2 बजे लाल किले के लाहौर द्वार से निकला। प्राचीरों पर तैनात तोपों की सलामी और किले की रोशन मीनारों से छोड़े गए आतिशबाजी और रॉकेटों के साथ, चांदनी चौक के मुख्य मार्ग के सामने के दोनों द्वार खुल गए।

सबसे पहले गदाधारी निकले। दिल्ली के लोग अवरोधों से बंधे रहना पसंद नहीं करते थे और जुलूस के रास्ते को रोशन करने वाली दीयों से सजी बांस की रेलिंग को तोड़कर आगे बढ़ने की आदत रखते थे। उत्तेजित भीड़ के बीच से रास्ता बनाना गदाधारियों का काम था, इससे पहले कि शाही हाथी - जो आतिशबाजी के बीच हमेशा थोड़े अप्रत्याशित होते हैं - द्वार से धीरे-धीरे प्रवेश करते हुए दिखाई दें।

दो राजकीय मंत्रियों ने घोड़ों पर सवार होकर जुलूस की शुरुआत की। घोड़ों की गर्दन और टखनों पर शंखों के आभूषण गूंथे गए थे, और घंटियाँ लटकी हुई थीं। जैसे ही मंत्री निकले, उनके साथ पंखे लिए सेवक भी चल रहे थे। फिर मुगल पैदल सेना की एक

टुकड़ी आई, जिनके पास चमकीली काली ढालें, घुमावदार तलवारें, लंबे भाले और हरे-सुनहरे रंग के लहराते झंडे थे।
राजसी छह हाथी सोने और केसरिया रंग के मुकुटों से सजे हुए, सम्राट के राजचिह्न से अलंकृत सिर के वस्त्रों के साथ आगे बढ़े। हौदों से अधिकारियों ने राजसी प्रतीक चिन्हों को ऊपर उठाया, जिनका उपयोग मुगलों ने भारत में अपने आगमन के तीन शताब्दियों से भी अधिक समय से किया था: एक से किरणदार सूर्य का चेहरा; दूसरे से एक सुनहरे धनुष के दोनों सिरों पर लटकी दो सुनहरी मछलियाँ; तीसरे से एक शेर जैसे जानवर का सिर; चौथे से फातिमा का सुनहरा हाथ; पाँचवें से एक घोड़े का सिर; और अंतिम से एक छतरी या राजसी छाता। ये सभी सोने के बने थे और सोने के डंडों पर उठाए गए थे, जिनसे रेशमी पट्टियाँ लटक रही थीं।
फिर बारी-बारी से लाल कुर्ती पहने महल के सेवकों का एक दल प्रकट हुआ, जो दुल्हन के परिवार के लिए भोजन और उपहारों से भरी थालियाँ लिए हुए थे; ढोल बजाते और हवा में तोपें दागते ऊँटों का एक दस्ता; महल के रक्षकों के कमांडर कैप्टन डगलस के नेतृत्व में ब्रिटिश सिपाहियों की एक छोटी टुकड़ी, सभी चुस्त-दुरुस्त बसबी और नीले-केसरिया रंग की वर्दी में, और दो हल्की तोपों के साथ; पीले कुर्ती और लाल कमरबंद पहने स्किनर हॉर्स की एक टुकड़ी, जिनके सिर पर कवच और मध्ययुगीन दिखने वाले हेलमेट थे; बैलगाड़ियों का एक समूह, जिन पर मुगल ढोल वादकों, शहनाई वादकों, तुरही वादकों और झांझ बजाने वालों के कई दल बैठे थे; और किंगफिशर नीले रंग में रंगी एक यूरोपीय बग्घी, जिसमें वरिष्ठ राजकुमारों का एक दल था, जिनके सुनहरे ब्रोकेड आतिशबाजी के प्रकाश में चमक रहे थे।
प्रत्येक समूह के पीछे मशालें लहराते हुए दल आते थे, जिनके बीच-बीच में कांच के घड़ों में मोमबत्तियाँ लिए हुए लोग भी दिखाई देते थे। साथ ही, पानी ढोने वालों के समूह भी थे जो जुलूस द्वारा उड़ाई गई गर्मी की धूल को शांत करने के प्रयास में अपनी मशकों को सड़क पर खाली कर रहे थे।
बग्घी के पीछे युवा राजकुमारों का एक दूसरा, छोटा समूह आया, इस बार वे घोड़ों पर सवार थे; और उनके बीचोंबीच दूल्हा चल रहा था। मिर्ज़ा जवान बख्त केवल ग्यारह वर्ष का था, उस समाज में भी जहाँ बच्चों की शादी किशोरावस्था में ही कर दी जाती थी, वह एक युवा दूल्हा था। राजकुमार के ठीक पीछे हाथी लहरा रहा था जिस पर स्वयं सम्राट सवार थे, अपने सुनहरे हौदे में बैठे हुए और चिलचिलाती रात की गर्मी के

बावजूद, अपने राजकीय वस्त्रों और आभूषणों से सजे हुए, और उनके निजी सेवक मोर पंखा लिए हुए उनके साथ चल रहे थे। बाकी दरबारी पैदल पीछे-पीछे चल रहे थे, एक लंबी कतार जो चट्टा चौक, किले के बाज़ार से होते हुए किले के ठीक बीच में स्थित नक्का खाना दरवाजा, या ढोल घर के द्वार तक फैली हुई थी।

इससे कुछ समय पहले ही सम्राट और जवान बख्त दोनों ने ऑस्ट्रियाई कलाकार ऑगस्ट शोएफ़्ट के सामने बैठकर अपना चित्र बनवाया था। ज़फ़र के चित्र में एक गरिमापूर्ण, संयमित और बेहद खूबसूरत वृद्ध व्यक्ति को दर्शाया गया है, जिनकी नाक नुकीली और दाढ़ी करीने से संवारी हुई है। उनकी लंबाई और आश्चर्यजनक रूप से चौड़े व मांसल शरीर के बावजूद, उनकी बड़ी भूरी, पानीदार आँखों में, जिनकी पलकें असामान्य रूप से लंबी हैं, एक गहरी कोमलता और संवेदनशीलता झलकती है। किशोरावस्था में राजकुमार रहे ज़फ़र अपने चित्रों में हमेशा थोड़े अटपटे और अनिश्चित से दिखते थे, मोटे, स्पष्ट रूप से असहज और कम दाढ़ी वाले। लेकिन जैसे-जैसे जवानी ढलकर अधेड़ उम्र में पहुँची, उनका रूप निखरता गया और बुढ़ापे में—असामान्य रूप से—वे पहले से भी अधिक आकर्षक दिखने लगे। अब सत्तर के दशक के मध्य में, उनके गाल पीले पड़ गए थे, नाक अधिक उभरी हुई थी और उनका हावभाव अधिक राजसी हो गया था। फिर भी, जब वृद्ध सम्राट घुटनों के बल बैठकर, थके हुए मनकों को गिनते हैं, तो उनकी गहरी आँखों के भाव में कुछ स्पष्ट उदासी झलकती है; उनके भरे हुए होठों की बनावट में अब भी वही उदास, धैर्यपूर्ण समर्पण भाव झलकता है जो पिछली तस्वीरों में दिखाई देता था। शोएफ़्ट ने ज़फ़र को सोने के कढ़ाही वस्त्रों के नीचे थोड़ा दबा हुआ दिखाया है, जो उन्हें सुशोभित करते हैं, और साथ ही साथ विशाल रक्तरंग माणिकों और तीतर के अंडे के आकार के मोतियों की मालाओं से कुछ बोझिल भी। ये मालाएँ उनके गले में भारी लग रही हैं। यह एक ऐसे व्यक्ति का चित्र है जो अपने पद के बंधनों में जकड़ा हुआ है।

* अंतिम मुगल सम्राट बहादुर शाह जफर का जन्म 1775 में शाहजहानाबाद (वर्तमान पुराना दिल्ली) में हुआ था और उनकी मृत्यु 1862 में रंगून (वर्तमान यांगून) में हुई थी। यह अंश 'द लास्ट मुगल' से लिया गया है।

* हौदा हाथी की पीठ पर रखी जाने वाली सीट होती है; इस काल में अक्सर हौदों को चंदवा से ढका जाता था।

नौ

~

रणजीत सिंह, पंजाब के महाराजा *

खुशवंत सिंह

एक सुलेखक, जिसने कुरान की एक प्रति बनाने में कई साल बिताए थे और हिंदुस्तान के किसी भी मुस्लिम राजकुमार से अपनी मेहनत का उचित दाम पाने में असफल रहा था, लाहौर में विदेश मंत्री फकीर अजीजुद्दीन को इसे बेचने के लिए पहुंचा। फकीर ने काम की प्रशंसा तो की, लेकिन भुगतान करने में असमर्थता व्यक्त की। यह बातचीत रणजीत सिंह ने सुन ली और उन्होंने सुलेखक को अपने पास बुलाया। महाराजा ने आदरपूर्वक पवित्र ग्रंथ को अपने माथे से लगाया और फिर अपनी एक आंख से लेखन का बारीकी से अध्ययन किया। वे कार्य की उत्कृष्टता से प्रभावित हुए और कुरान को अपने निजी संग्रह के लिए खरीद लिया। कुछ समय बाद फकीर अजीजुद्दीन ने उनसे पूछा कि उन्होंने उस पुस्तक के लिए इतनी ऊंची कीमत क्यों चुकाई, जिसका सिख होने के नाते उन्हें कोई उपयोग नहीं होगा। रणजीत सिंह ने उत्तर दिया: 'ईश्वर ने मुझे सभी धर्मों को एक ही आंख से देखने के लिए बनाया है; इसीलिए उसने दूसरी आंख से प्रकाश छीन लिया।'

यह कहानी भले ही मनगढ़ंत हो, लेकिन पंजाबियों द्वारा आज भी सुनाई जाती है क्योंकि इसमें इस सवाल का जवाब है कि रणजीत सिंह पंजाबी मुसलमानों, हिंदुओं और सिखों को एकजुट करने और पंजाब के इतिहास में एकमात्र स्वतंत्र राज्य की स्थापना करने में कैसे सफल हुए। एक और किस्सा, जो उतना ही मनगढ़ंत और उससे भी अधिक लोकप्रिय है, रणजीत सिंह की विपरीत परिस्थितियों में भी सफलता का दूसरा कारण बताता है: सत्ता के प्रति उनका अटूट समर्पण। कहा जाता है कि एक बार उनकी मुस्लिम पत्नी मोहरान ने उनके कुरूपता पर टिप्पणी की - वे काले थे, चेचक से ग्रसित थे और एक आंख से अंधे थे ('बिल्कुल भूरे बालों और एक आंख वाले बूढ़े चूहे की तरह' - एमिली ईडन) - 'महाराज, जब ईश्वर सौंदर्य बांट रहे थे तब आप कहां थे?'

'मैं अपने लिए एक राज्य की खोज में गया था,' राजा ने उत्तर दिया।

रणजीत सिंह के जीवनीकारों ने उनके साथ अन्याय किया है। हिंदू और सिख प्रशंसकों ने उन्हें एक गुणी और निस्वार्थ देशभक्त के रूप में महिमामंडित किया। इस अकादमिक अतिशयोक्ति ने एक सच्चे व्यक्तित्व और चतुर राजनीतिज्ञ को एक कमजोर संत और सरल स्वभाव वाले राष्ट्रवादी के रूप में चित्रित कर दिया। मुस्लिम इतिहासकारों ने उन्हें लालची लुटेरा बताकर उन पर अत्यधिक कठोरता बरती।

अंग्रेजी लेखकों ने, जिन्होंने अपनी सामग्री मुख्य रूप से मुस्लिम स्रोतों से ली, उन्हें एक धूर्त व्यक्ति (अक्सर प्रयुक्त मुहावरा 'धूर्त प्राच्यवादी') के रूप में चित्रित किया, जो नैतिक मूल्यों से रहित था और जिसकी एकमात्र अच्छी बात अंग्रेजों के साथ उनकी मित्रता थी। वे न केवल गपशप सुनने से परहेज नहीं करते थे (प्रत्येक प्राच्य दरबार हमेशा अफवाहों का अड्डा रहा है) बल्कि उन्हें इतिहास की रचनाओं में शामिल करके उन्हें और भी लोकप्रिय बना दिया। हाल के वर्षों में, कुछ भारतीय विश्वविद्यालयों के इतिहास विभागों के तत्वावधान में रणजीत सिंह के शासनकाल के विभिन्न पहलुओं पर मोनोग्राफ प्रकाशित किए गए हैं। ये अधिकतर ज्ञात तथ्यों की सूचियाँ हैं जिन्हें ऐतिहासिक आंदोलनों के संदर्भ में समझाने का कोई प्रयास किए बिना कालानुक्रमिक क्रम में रखा गया है। इस पद्धति के कारण उनके राज्य का अचानक पतन एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक आंदोलन की परिणति के बजाय इतिहास की एक आकस्मिक घटना प्रतीत होता है। जिस प्रकार तट से देखने वालों को ज्वार शांत प्रतीत होता है, उसी प्रकार पंजाबी राष्ट्रवाद की तीव्र अंतर्धारा उन लोगों की नजरों से ओझल हो गई जिन्होंने उस लहर की गहराई को नहीं समझा जिस पर सवार होकर रणजीत सिंह के नेतृत्व में सिख सत्ता में आए थे। इसी प्रकार, सिख राज्य का पतन केवल युद्ध के मैदान में दुर्भाग्य के कारण नहीं था, बल्कि जिस प्रकार एक लहर अपनी प्रेरक शक्ति खो देने पर रेत पर विलीन हो जाती है, उसी प्रकार यह एक ऐसे आंदोलन का अंत था जिसकी जीवन शक्ति समाप्त हो चुकी थी और जिसने अपना नेता खो दिया था।

रणजीत सिंह न तो निस्वार्थ देशभक्त थे और न ही लालची लुटेरे। वे न तो सदाचार के आदर्श थे और न ही कामुक व्यभिचारी। सबसे बढ़कर, उनका व्यक्तित्व इतना जीवंत और उत्साहपूर्ण था कि उनकी जीवन कहानी को तथ्यों, आंकड़ों और उपाख्यानों की नीरस सूची में समेटना असंभव है। एक राजनीतिक व्यक्तित्व के रूप में, रणजीत सिंह अपने दो प्रसिद्ध समकालीनों, फ्रांस के नेपोलियन बोनापार्ट और मिस्र के मोहम्मद अली के समान ही असाधारण थे। वे एक साधारण सरदार से उठकर अपने समय के सबसे शक्तिशाली भारतीय शासक बने। वे हज़ार वर्षों में पहले भारतीय थे जिन्होंने हिंदुस्तान की उत्तर-पश्चिमी सीमाओं से आने वाले आक्रमणों को रोका। यद्यपि उन्होंने अपने राज्य को सुदृढ़ करने के लिए सैकड़ों सामंती जमींदारों को उनकी भूमि से बेदखल कर दिया, फिर भी वे उनका स्नेह जीतने और उन्हें वफादार

दरबारी बनाने में सफल रहे। विश्व के इतिहास में, रणजीत सिंह के साम्राज्य के समान विशाल साम्राज्य का निर्माण करने वाला ऐसा निरंकुश शासक मिलना मुश्किल होगा, जिसने कभी किसी की हत्या निर्ममता से न की हो। उन्होंने पंजाब के अशांत सिखों और मुसलमानों को अपनी विस्तारवादी नीति का स्वेच्छा से समर्थन करने के लिए राजी कर लिया, जिसके तहत कश्मीरियों और उत्तर-पश्चिमी सीमांत के पठानों को उन्होंने अपने अधीन कर लिया और उत्तर में चीन और अफगानिस्तान की सीमाओं से लेकर दक्षिण में सिंध के रेगिस्तानों तक अपना प्रभाव क्षेत्र फैलाया। उनकी सफलता निस्संदेह उनकी प्रजा में राष्ट्रवाद की भावना को जागृत करने और उन्हें यह समझाने की क्षमता के कारण थी कि मुसलमान, हिंदू या सिख होने से कहीं अधिक महत्वपूर्ण पंजाबी होना है। उनकी सिख और हिंदू सेनाओं ने पंजाब के सिख और हिंदू राजाओं को पराजित किया। उनके मुसलमान नजीबों ने अपने हिंदुस्तानी, अफगानी और पठान सहधर्मियों की 'काफिरों' के खिलाफ धर्मयुद्ध छेड़ने की अपील को ठुकरा दिया और इसके बजाय धर्मयुद्ध छेड़ने वालों को खत्म करने में मदद की। जिस वर्ष रणजीत सिंह का निधन हुआ, उसी वर्ष कर्नल शेख बसवान के नेतृत्व में उनकी मुस्लिम सेनाओं ने खैबर दर्रे को पार किया और विजय परेड में काबुल की सड़कों पर रणजीत सिंह का ध्वज फहराया।

और कुछ वर्षों बाद, डोगरा हिंदू जोरावर सिंह ने तिब्बत के मध्य में सिख ध्वज फहराया। ये घटनाएँ पंजाबी साम्राज्यवाद की चरम सीमा थीं, जिसने रणजीत सिंह को सत्ता के शिखर तक पहुँचाया और जो उनकी मृत्यु के तुरंत बाद समाप्त हो गया।

* सिखों के महानतम सम्राट रणजीत सिंह का जन्म 1780 में हुआ था और उनकी मृत्यु 1839 में हुई थी। यह अंश रणजीत सिंह: पंजाब के महाराजा नामक पुस्तक से लिया गया है।

दस

~

माधवराव सिंधिया *

VIR SANGHVI AND NAMITA BHANDARE

किसी भी शाही परिवार में, सिंहासन के लिए पुरुष उत्तराधिकारी का जन्म एक महत्वपूर्ण घटना होती है। सिंधिया परिवार के लिए, जो अपने पूरे इतिहास में दत्तक

ग्रहण और उत्तराधिकार के मुद्दों से ग्रस्त रहा है, एक जन्मजात पुत्र का आगमन और भी अधिक स्वागत योग्य था।

10 मार्च 1945 को जब माधवराव सिंधिया का जन्म बंबई में हुआ, तो इस नए आगमन से खुशी और उत्सव का माहौल छा गया। बंबई में मिठाई बांटी गई और महाराजा जीवाजीराव ने नवोदित राजकुमार को ग्वालियर वापस लाने के लिए एक विशेष ट्रेन की व्यवस्था की।

ग्वालियर स्टेशन से रेल साइडिंग के रास्ते ट्रेन जय विलास महल में पहुंची। महल और ग्वालियर किला रोशनी से जगमगा उठे; तोपों की सलामी दी गई; कैदियों को रिहा किया गया; गरीबों को भोजन कराया गया; कवियों ने नए युवराज के सम्मान में कविताएं लिखीं; लगभग पूरे शहर में मिठाइयां बांटी गईं; और फिर महल में दोपहर और रात के भोजन का एक अंतहीन सिलसिला चला।

मार्च के उस महीने ग्वालियर में मौजूद कोई भी व्यक्ति उस उल्लास को नहीं भूल सकता। ग्वालियर के मूल निवासी अटल बिहारी वाजपेयी को मिठाइयाँ और कविताएँ याद हैं। उत्सव के माहौल को देखकर सबसे गंभीर व्यक्ति भी अतिशयोक्ति करने पर मजबूर हो जाता था। सी. राजगोपालाचारी, जो बाद में भारत के पहले गवर्नर जनरल बने (और रामायण के प्रसिद्ध अंग्रेजी अनुवादक भी थे), ने जन उल्लास की तुलना 'अयोध्या के उस युग से की, जब कौशल्या ने राम को जन्म दिया था'।

वाजपेयी की जन्म से जुड़ी यादें कई अन्य लोगों की यादों से मिलती-जुलती हैं: कई आधिकारिक समारोह हुए, लेकिन सबसे उल्लेखनीय बात यह थी कि आम नागरिकों ने किस तरह खुशी मनाई। निजी आवासों के बाहर हजारों दीये जलाए गए, आतिशबाजी की गई और प्रजा अपने उत्तराधिकारी के जन्म पर महाराजा को बधाई देने के लिए महल में उमड़ पड़ी।

सिंधिया परंपरा के अनुसार, महाराजा की बहन—इस मामले में, उनकी चचेरी बहन, आशा देवी फाल्के—को औपचारिक रूप से पुत्र का नामकरण करने का सम्मान दिया गया था।

सिंधिया परिवार में अब तीन बच्चे थे: पद्मा राजे, जिनका जन्म फरवरी 1942 में हुआ और जो अपने पिता की लाडली बेटी रहीं; उषा राजे, जिनका जन्म एक साल बाद हुआ; और युवराज माधवराव। सबसे छोटी दो बेटियाँ, वसुंधरा राजे और यशोदरा राजे, बाद में पैदा हुईं।

लेकिन उत्सवों के दौरान ही यह स्पष्ट हो गया था कि दुनिया स्वयं बदल रही थी।
द्वितीय विश्व युद्ध समाप्त होने वाला था और अधिकांश दूरदर्शी भारतीयों ने यह पहचान लिया था कि युद्धोत्तर काल ब्रिटिश साम्राज्य के अंत की शुरुआत का प्रतीक होगा। यह भी स्पष्ट था कि नया भारत महाराजाओं के प्रभुत्व में नहीं होगा, बल्कि एक समतावादी, उदार लोकतंत्र के रूप में संचालित होगा।
अधिकांश राजकुमार इन घटनाक्रमों को बेचैनी और आशंका से देख रहे थे। उन्हें आभास था कि जिन सम्मान और विशेषाधिकारों को वे अपना हक समझते आए थे, वे अब उनसे छीन लिए जाएंगे। कई राजकुमार तो सत्ता संभालने वाले कांग्रेसी नेताओं की तुलना में अंग्रेजों को ज्यादा पसंद करते थे। और लगभग हर राज दरबार में नए भारत के उदय को लेकर गहरी बेचैनी थी।
जीवाजीराव इस चलन का अपवाद थे। अपने कई साथी राजकुमारों के विपरीत, वे कभी भी उन फिजूलखर्चियों के शिकार नहीं हुए जो कई भारतीय राज्यों की विशेषता थीं। जहाँ कुछ राजकुमार एक काल्पनिक दुनिया में रहते थे जहाँ वे खुद को निरंकुश शासक समझते थे और अपने पसंदीदा कुत्तों की शादी कराने में बड़ी रकम खर्च करने में कोई संकोच नहीं करते थे, वहीं ग्वालियर के महाराजा ने मितव्ययिता और विवेक दोनों का पालन किया।
अपने साथी राजकुमारों की तुलना में जीवाजीराव लगभग मितव्ययी थे। घुड़दौड़ के प्रति उनके जुनून को छोड़कर, उनके पास कोई बड़ी फिजूलखर्ची नहीं थी। ग्वालियर का राजस्व वास्तव में राज्य के कल्याण पर खर्च किया जाता था और आडंबर और वैभव पर अपेक्षाकृत कम खर्च होता था।
परिणामस्वरूप, ग्वालियर एक आर्थिक रूप से मजबूत राज्य था। जब अंततः इसका भारत संघ में विलय हुआ, तो इसने राजकोष में 3.09 करोड़ रुपये का योगदान दिया। लेकिन आश्चर्यजनक रूप से, जीवाजीराव ने अपनी आवश्यकता से कहीं अधिक योगदान दिया: उन्होंने अपने निजी कोष से अतिरिक्त 17 करोड़ रुपये जोड़े: यह धन उनके पिता माधव महाराज द्वारा बड़ी मेहनत से एकत्र और बचाया गया था और अब इसी धन से ग्वालियर निवेश कोष और गंगाजली कोष का गठन हुआ था।
हालांकि माधव महाराज ऐसा कर सकते थे, लेकिन उन्होंने अपने निजी खर्चों के लिए इस निधि का उपयोग करने से इनकार कर दिया। इसके बजाय, उन्होंने उदारतापूर्वक योगदान देना जारी रखा और पूंजी बढ़ाने के प्रयास में निवेश की

देखरेख की। 1947 तक, गंगाजली निधि से प्राप्त आय वास्तव में मध्य भारत संघ के गठन करने वाले सभी 25 राज्यों के शासकों के लिए निर्धारित कुल निजी निधि से अधिक हो गई थी।
हालांकि ऐसा करने के लिए वह बाध्य नहीं थे, फिर भी जीवाजीराव ने बड़ी खुशी से यह सारी रकम भारतीय खजाने में जमा कर दी।
अपनी संपत्ति दांव पर लगाने की उनकी तत्परता के साथ-साथ नए भारत के साथ अपना भविष्य समर्पित करने की उनकी प्रबल इच्छा भी थी। जहां अन्य महाराजा स्वतंत्र राज्यों को चलाने या भारतीय संघ के साथ अपरिहार्य विलय को टालने का सपना देखते थे, वहीं जीवाजीराव नए भारत की ओर अग्रसर थे।
दिसंबर 1946 में, भारत की स्वतंत्रता से कई महीने पहले, जीवाजीराव ने स्वतंत्र और एकीकृत भारत के लिए अपना समर्थन घोषित किया। वे पाँचों तोपों की सलामी वाले राज्यों (ग्वालियर, मैसूर, कश्मीर, बड़ौदा और हैदराबाद) के शासकों में से विलय पत्र पर हस्ताक्षर करने वाले पहले शासक थे (यह घोषणा महाराजा की ओर से ग्वालियर के दीवान ने की थी)। राज्य मंत्रालय में सचिव वी. पी. मेनन, जिन्होंने सरदार वल्लभभाई पटेल के साथ मिलकर राजकुमारों को नए संघ में शामिल होने के लिए राजी किया था, ने बाद में लिखा कि जीवाजीराव ने कई शासकों को विलय के लिए राजी करने में 'सकारात्मक प्रभाव' डाला था।

~

1945 में, जब माधवराव का जन्म हुआ, तब जीवाजीराव पहले से ही नए भारत में बदलाव की योजना बना रहे थे। उन्होंने महसूस किया कि उनके बेटे का जीवन उनसे बहुत अलग होगा और उन्होंने उसे अलग तरीके से पालने का निश्चय किया।
फिर भी, चूंकि सिंधिया अभी भी महाराजा थे और यह अभी तक स्पष्ट नहीं था कि नई व्यवस्था में राजकुमारों की क्या भूमिका होगी, इसलिए माधवराव को सिंधिया परंपराओं को समझना और महल की संस्कृति में ढलना सीखना भी आवश्यक था।
जीवाजीराव की शिक्षा उस युग में राजकुमारों को दी जाने वाली मानक शिक्षा के समान ही थी। उन्होंने हम्फ्री ट्रेवेलियन की देखरेख में निजी शिक्षा प्राप्त की और उन्हें भाषाएँ और संगीत जैसी कलाएँ सिखाने के लिए शिक्षक नियुक्त किए गए। जैसे-जैसे वे बड़े होते गए, ट्रेवेलियन ने उन्हें राज्य भर के भ्रमणों पर भेजा ताकि वे अपने राज्य और अपनी प्रजा को बेहतर ढंग से जान सकें।

समझदारी से काम लेते हुए, जीवाजीराव माधवराव के लिए ऐसा कुछ नहीं चाहते थे। उस दौर में महाराजाओं की परंपरा थी कि वे अपने बच्चों के लिए अंग्रेज़ दाइयाँ रखते थे—जीवाजीराव ने एक अमेरिकी दाई, नोर्मा मैके को नियुक्त किया। लेकिन यह प्रयोग सफल नहीं हुआ। दाई ग्वालियर दरबार में ठीक से घुल-मिल नहीं पाई और जल्दी ही चली गई। माधवराव की देखभाल का जिम्मा तब सिंधिया परिवार की एक पुरानी कर्मचारी, नर्स बीट्रिस बारबरा कैस्टेलिनो (1934 में नियुक्त), जो बॉम्बे के बायकुला में जन्मी थीं, और एक नौकरानी, शांताबाई नखरे को सौंपा गया। जब युवराज की देखभाल का जिम्मा भारतीयों को सौंप दिया गया, तो जीवाजीराव ने स्पष्ट कर दिया कि माधवराव को मराठी को अपनी पहली भाषा मानना होगा—आखिरकार, यह उनके कनेरखेड़ा के पूर्वजों की भाषा थी। नर्स कैस्टेलिनो को निर्देश दिया गया कि वह माधवराव से केवल मराठी में ही बात करें।

युवा राजकुमार का पालन-पोषण उषा किरण पैलेस (जो अब एक लग्जरी होटल है) की नर्सरी में अपनी दो बहनों के साथ हुआ, लेकिन वह चचेरे भाइयों और बहनों के अपने बड़े विस्तारित परिवार के साथ लगातार संपर्क में रहे।

माधवराव की चचेरी बहन मीना सिंह, जो इस बड़े परिवार का अभिन्न अंग थीं, याद करती हैं कि उनका बचपन परिस्थितियों के हिसाब से जितना सामान्य हो सकता था, उतना ही सामान्य था। कभी-कभार हाथी की सवारी हो जाती थी और कभी-कभार कोई विदेशी अतिथि आ जाता था, लेकिन इसके अलावा बच्चों की आम गतिविधियाँ जैसे अंधेरा कमरा, लुका-छिपी (जब बच्चे उषा किरण में लिफ्ट पर कब्जा कर लेते थे) और छोटे-मोटे नाटक और नाटक होते थे। सबसे बड़ी बेटी होने के नाते पद्मा राजे हमेशा मुखिया रहती थीं और अक्सर अपनी बात मनवा लेती थीं। मीना सिंह को सिंड्रेला के एक छोटे से नाटक की याद है। स्वाभाविक रूप से, पद्मा राजे को सिंड्रेला की भूमिका मिली। माधवराव को साधारण कोचवान की भूमिका मिली।

~

महाराजा जीवाजीराव अपने समकालीनों से कितने अलग थे, इसका संकेत इस बात से मिलता है कि सिंधिया स्कूल उनकी पसंदीदा विचारधाराओं में से एक थी।

ग्वालियर के कुलीन वर्ग के सरदारों के बेटों को शिक्षित करने के लिए 1897 में सरदार स्कूल के रूप में स्थापित इस विद्यालय को 1933 में एक अंग्रेज प्रधानाचार्य, एफ. जी. पियर्स द्वारा एक पब्लिक स्कूल में परिवर्तित कर दिया गया था।

पियर्स, जो अपनी आदर्श एनी बेसेंट की तरह एक थियोसोफिस्ट थे, साम्राज्यवाद के समर्थक नहीं थे और सिंधिया स्कूल के आधे शिक्षक खादी पहनते थे और महात्मा गांधी के अनुयायी थे। भारत की स्वतंत्रता से बहुत पहले, 1935 से ही इस स्कूल में नियमित रूप से 'जन गण मन' गाया जाता था, जबकि रवींद्रनाथ टैगोर का यह गीत राष्ट्रीय गान बनने से बहुत पहले की बात है।

1930 के दशक में भारत में ऐसे स्कूल बहुत कम थे; निश्चित रूप से किसी भारतीय शाही परिवार द्वारा संचालित कोई राष्ट्रवादी सार्वजनिक स्कूल तो था ही नहीं। पूर्व मंत्री के. नटवर सिंह, जो उसी स्कूल के पूर्व छात्र हैं, याद करते हुए कहते हैं, 'यह एक बहुत ही अनोखा स्कूल था।' जवाहरलाल नेहरू के भतीजे, उनकी बहन कृष्ण हुथीसिंग के पुत्रों को भी वहीं पढ़ने के लिए भेजा गया था।

जीवाजीराव के दृष्टिकोण से, एक राष्ट्रवादी बोर्डिंग स्कूल उनके बेटे माधवराव को नए भारत के लिए तैयार करने के लिए आदर्श संस्थान था। बस एक ही समस्या थी: क्या सिंधिया परिवार के नाम पर स्थापित स्कूल सिंधिया युवराज के साथ अन्य छात्रों की तरह व्यवहार करेगा?

जीवाजीराव यह सुनिश्चित करने के लिए दृढ़ संकल्पित थे कि ऐसा ही हो। उन्होंने सख्त निर्देश दिए कि माधवराव को कोई विशेष सुविधा न मिले। वह वही भोजन करेगा जो अन्य छात्र करते हैं। वह उन्हीं साधारण लकड़ी के पलंगों पर सूती गद्दों के साथ सोएगा। वह वही वर्दी पहनेगा। उसे रिश्तेदारों से विशेष मुलाकात की अनुमति नहीं होगी। इत्यादि।

कुछ हद तक यह कारगर रहा। उन दिनों विद्यालय की परिस्थितियाँ बहुत ही सादी थीं और माधवराव ने भी बाकी सब की तरह ही मुश्किलों का सामना किया। उदाहरण के लिए, गर्म पानी की व्यवस्था नहीं थी। सर्दी की सुबह की कड़ाके की ठंड में कांपते हुए लड़के कतार में खड़े होकर कोयले से जलने वाले एक बड़े चूल्हे से बाल्टियाँ भरते थे। माधवराव भी बाकी सब के साथ कतार में खड़ा होता था, हालाँकि उषा किरण विद्यालय में वह एक बिल्कुल अलग तरह के जीवन का आदी था।

जीवाजीराव माधवराव को किसी भी प्रकार की विशेष सुविधा न मिले, यह सुनिश्चित करने के लिए इतने दृढ़ निश्चयी थे कि वे समय-समय पर स्वयं जाकर देखते थे कि उनके बेटे को कौन-कौन सी सुविधाएं मिल रही हैं। एक बार माधवराव स्कूल के कुछ लड़कों के साथ बॉम्बे में राष्ट्रीय कैडेट कोर (एनसीसी) नौसेना विंग शिविर में भाग लेने

गए। शिविर कठिन था: शारीरिक सहनशक्ति, नाव खींचना, तैराकी आदि की परीक्षाएं थीं। सब कुछ ठीक चल रहा था, तभी जीवाजीराव अचानक वहां पहुंच गए।
वह अपने बेटे की प्रगति से प्रसन्न थे, लेकिन तभी अचानक उन्होंने माधवराव का बिस्तर देखने की इच्छा जताई। जहाँ अधिकांश लड़कों के पास एनसीसी के नियमों के अनुसार मोटे चादर और पतला गद्दा होता था, वहीं माधवराव के पास मुलायम, मोटा गद्दा और महंगी चादरें थीं।
जीवाजीराव क्रोधित हो गए। माधवराव ने समझाने की कोशिश की कि ये चीजें सिंधिया परिवार के बॉम्बे स्थित महल, समुद्र महल के कर्मचारियों द्वारा बिना मांगे ही उपलब्ध कराई गई थीं, लेकिन इससे उनके पिता का गुस्सा शांत नहीं हुआ। गद्दे और चादरें समुद्र महल वापस भेज दी गईं और महाराजा ने जोर देकर कहा कि उनके बेटे को एनसीसी के नियमों के अनुसार बिस्तर दिया जाए।
माधवराव के सिंधिया स्कूल में रहने के दौरान 'अचानक निरीक्षण' भी एक आम बात बन गई थी। जीवाजीराव अचानक आकर अपने बेटे को दी जा रही सुविधाओं का मौके पर ही निरीक्षण करते थे। आमतौर पर वे भोजन के समय आते थे। इससे उन्हें यह सुनिश्चित करने में मदद मिलती थी कि उनका बेटा अन्य लड़कों की तरह ही सादा भोजन कर रहा है।
क्या जीवाजीराव की यह ज़िद कारगर साबित हुई कि उनके बेटे को कोई विशेष सुविधा न दी जाए? कुल मिलाकर तो ऐसा ही लगता है, लेकिन ज़ाहिर है, विद्यालय के नौकरों ने युवराज की अच्छी देखभाल सुनिश्चित करने के लिए हर संभव प्रयास किया। नटवर सिंह कहते हैं कि उन्हें बताया गया था कि माधवराव को खाना हमेशा गरम परोसा जाता था और उन्हें कभी ठंडी चपाती नहीं खानी पड़ती थी। सिंह कहते हैं, 'उन्होंने कभी कोई विशेष सुविधा नहीं मांगी और न ही उन्हें मिली, लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से उनके साथ अलग व्यवहार किया जाता था। मुझे लगता है कि यह अपरिहार्य था।'
दोस्त और शिक्षक माधवराव को एक होशियार लड़का और औसत से ऊपर का विद्यार्थी मानते थे। कई लोग उसके दृढ़ संकल्प से आश्चर्यचकित थे: जब वह किसी काम को करने का ठान लेता था, तो आमतौर पर उसे अच्छे से पूरा करता था।
क्रिकेटर के रूप में उनका करियर—जीवन भर इस खेल से उनका गहरा लगाव बना रहा—सिंधिया स्कूल की टीम का हिस्सा बनने की उनकी इच्छा से पनपा। उनके

अंग्रेजी शिक्षक और बाद में क्रिकेट कोच रहे शरीफ अहमद याद करते हैं, 'वह खेलों में असाधारण नहीं थे। जन्मजात खिलाड़ी नहीं थे, लेकिन फिर भी वे स्कूल की टीम में जगह बना लेते थे।'

अहमद ने माधवराव से कहा कि वह स्कूल टीम में जगह बनाने के लायक नहीं है। माधवराव ने इस पर जमकर अभ्यास करना शुरू कर दिया, मानो उन पर कोई जुनून सवार हो गया हो, और अंततः अहमद को यह स्वीकार करना पड़ा कि वह टीम के लिए योग्य है।

उनका चयन टीम में हुआ और अंततः वे सिंधिया स्कूल के लिए सलामी बल्लेबाज बने। अहमद याद करते हुए कहते हैं, 'तेज गेंदबाज का सामना करते समय वे निडर थे।'

1960 की गर्मियों में माधवराव को अपनी स्कूल-छोड़ने की परीक्षा, सीनियर कैम्ब्रिज देनी थी। हालाँकि उन्होंने अधिकांश विषयों में अच्छा प्रदर्शन किया था, लेकिन वे गणित और विज्ञान में लगातार असफल रहे थे। उनके गणित शिक्षक ने तो वास्तव में उन्हें निष्फल मान लिया था, क्योंकि उन्हें पूरा विश्वास था कि वे दोनों विषयों में असफल हो जाएँगे।

जीवाजीराव ऐसा होने देने को तैयार नहीं थे। उन्होंने विद्यालय के एक अन्य शिक्षक, जी. के. कपूर से संपर्क किया, जिन्होंने वास्तव में कभी माधवराव को पढ़ाया नहीं था। उनका निर्देश सीधा-सादा था: गर्मियों की छुट्टियों में बॉम्बे आकर माधवराव को गणित और विज्ञान पढ़ाना।

कपूरी को समुद्र महल जाने का पहला दिन याद है। जीवाजीराव की अपने बेटे को दोनों विषयों में पास होते देखने की इच्छा को ध्यान में रखते हुए कपूर घबराए हुए थे। जब सभी नियमित शिक्षकों ने हार मान ली थी, तो वह माधवराव को गणित और विज्ञान में सफलतापूर्वक कैसे पढ़ा सकते थे?

माधवराव के कमरे में ले जाए जाने पर उनकी घबराहट और बढ़ गई। औपचारिकताओं के समाप्त होते ही उनके छात्र ने सीधे मुद्दे पर आकर कहा: 'मैं गणित या विज्ञान नहीं पढ़ना चाहता।'

कपूरी ने अपने शिक्षक करियर को अपनी आंखों के सामने बिखरते देखा। अब वे कहते हैं, 'अगर मैं असफल होकर सिंधिया स्कूल लौटता, तो सब मेरा मजाक उड़ाते।'

लेकिन जल्द ही उन्हें दो बातें पता चलीं। पहली: अगर जीवाजीराव कोई काम करवाना चाहते थे, तो माधवराव के पास उसकी बात मानने के अलावा कोई विकल्प नहीं था। और दूसरी: एक बार जब माधवराव किसी काम पर मन लगाकर काम करते थे, तो आमतौर पर सफल हो जाते थे।

कपूरी की कोचिंग तकनीक यह थी कि वे अपने छात्र से पिछली परीक्षाओं के प्रश्नपत्रों के उत्तर पूछते थे। जैसे-जैसे दिन बीतते गए, उन्हें यह देखकर सुखद आश्चर्य हुआ कि माधवराव उनकी उम्मीद से कहीं बेहतर प्रदर्शन कर रहा था।

उन्होंने यह बात जीवाजीराव को बताई। महाराजा ने कहा, 'अच्छा। अब आप विज्ञान की पढ़ाई शुरू कर सकते हैं।'

और इसलिए, माधवराव की झुंझलाहट के बावजूद, उन्हें सुबह दो घंटे गणित की ट्यूशन पर और फिर दोपहर में दो घंटे विज्ञान के लिए बिताने पड़ते थे।

लेकिन कपूर को यह जानकर राहत मिली कि माधवराव ने विज्ञान भी उसी तरह सीख लिया था जैसे उन्होंने गणित में महारत हासिल करने के लिए खुद को मजबूर किया था।

और जब अंततः परीक्षा परिणाम घोषित हुए, तो माधवराव ने दोनों विषयों में उत्तीर्ण होकर प्रथम श्रेणी प्राप्त की।

~

युवा माधवराव के सबसे करीबी दोस्तों में सिंधिया स्कूल में उनके सहपाठी बालेंदु शुक्ला भी थे। उनकी दोस्ती की शुरुआत अच्छी नहीं रही। दोनों के बीच स्कूली बच्चों की झड़प हुई; बालेंदु ने माधवराव को मारा और उन्हें रुला दिया।

बालेंदु याद करते हुए कहते हैं, 'सबने मुझसे कहा कि स्कूल में मेरा भविष्य खत्म हो गया है। मैंने महाराजा के बेटे को रुला दिया था।'

लेकिन उन्हें यह पता नहीं था कि अगर माधवराव ने अपने पिता से शिकायत भी की होती, तो जीवाजीराव इसमें दखल देने से इनकार कर देते। और जैसा कि हुआ, माधवराव ने अपने गृहस्वामी पी. बी. एल. अग्निहोत्री से शिकायत करने के बारे में कभी सोचा भी नहीं।

इसके बजाय, कुछ दिनों बाद, सूर्यास्त के ठीक बाद (अस्थाचल वह समय होता है जब सिंधिया स्कूल के सभी लड़के कुछ मिनटों के मौन के लिए इकट्ठा होते हैं) वह बालेंदु

के पास आया और कहा कि वह दोस्त बनना चाहता है। और वे जीवन भर के लिए दोस्त बन गए।

बलेंदु और माधवराव शिकार के साथी बन गए। उन दिनों, शिकार करना अधिकांश महाराजाओं के जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा था। ग्वालियर का जंगल अपने विशाल बाघों के लिए प्रसिद्ध था और सिंधिया परिवार ने बड़े-बड़े बाघ अभयारण्य बनाए हुए थे। विडंबना यह है कि महाराजा और उनके मेहमान बाघों का शिकार करते थे, फिर भी मध्य प्रदेश में बाघों की संख्या आज की तुलना में कहीं अधिक थी, जबकि आज शिकार पर पूरी तरह प्रतिबंध है। शिकारगाह केवल राजकुमारों के लिए आरक्षित होने के कारण उनकी अच्छी देखभाल की जाती थी और अवैध शिकार लगभग न के बराबर होता था।

भारत सरकार विदेशी आगंतुकों को किसी महाराजा के पास भेजती और उनसे बाघ के शिकार की व्यवस्था करने का अनुरोध करती। उदाहरण के लिए, राजकुमार फिलिप और महारानी एलिजाबेथ को जयपुर भेजा गया, जबकि युगोस्लाविया के मार्शल जोसिप ब्रोज़ टिटो को ग्वालियर भेजा गया, ताकि वे जीवाजीराव के अतिथि बन सकें। (टिटो बाघ का शिकार करने के लिए उत्सुक थे, लेकिन अपनी इस इच्छा को पूरा किए बिना ही युगोस्लाविया लौट गए।)

माधवराव हमेशा मानते थे कि शिकार ने उनके चरित्र के विकास में बहुत बड़ा योगदान दिया। वे अपने दोस्तों से कहते थे, 'इसने मुझे मजबूत बनाया,' और अपने बचपन के शिकारों को याद करते थे। 'मैं कई दिनों तक बाहर रहता था, भीषण गर्मी में पसीना बहाता था, जंगल के बीचोंबीच शिकारगाहों में ज़मीन पर सोता था और जो कुछ भी मिलता था, वही खाता था।'

उन्होंने सत्रह साल की उम्र में अपना पहला बाघ मारा था - एक विशाल जानवर जो अब जय विलास पैलेस स्थित सिंधिया संग्रहालय में संरक्षित अवस्था में रखा है, जिसके प्रत्येक पंजे का आकार एक आदमी के सिर के बराबर है।

बलेंदु को शिकार से जुड़ी कई यादें हैं और उनका कहना है कि आम धारणा के विपरीत, शिकारी अक्सर अपने शिकार द्वारा गंभीर रूप से घायल होने के खतरे में रहते थे।

उन्हें एक बाल-बाल बचने की घटना याद है: ‘हम एक मचान पर बैठे थे, जो मुश्किल से 12 फीट ऊंचा था, हमें बाघ या किसी बड़े जानवर की उम्मीद नहीं थी। मैंने एक

नीलगाय देखी, गोली चलाई और वह उसकी पीठ में लगी। कुछ मिनट बाद, जब हम अभी भी मचान पर ही थे, प्रबल [माधवराव के सहायक पुलिस अधिकारी] ने एक बाघ को हमारी ओर धीरे-धीरे बढ़ते हुए देखा। भैया के पास .375 डबल बैरल बंदूक थी और उन्होंने गोली चलाई। गोली बाघ के कंधे पर लगी और जानवर दहाड़ा और हमारी ओर हवा में ऊंची छलांग लगाई। भैया ने दूसरी गोली चलाई लेकिन बंदूक नहीं चली। प्रबल ने अपनी बंदूक भैया को सौंप दी और उन्होंने तीसरी गोली चलाई। लेकिन फिर भी बाघ को नहीं लगी। अब बाघ हमसे केवल 15 फीट दूर था। आखिरकार, भैया ने फिर से गोली चलाई। इस बार गोली बाघ के सिर पर लगी। बाघ गिर गया लेकिन मरा नहीं था। हमें फिर से गोली चलानी पड़ी और तब जाकर वह मरा। जब हम मचान से नीचे उतरे, तो हम यह सोचकर कांप रहे थे कि हम कितनी बुरी तरह बाल-बाल बचे थे।'

बाद के जीवन में, माधवराव ने कहा कि यद्यपि वे जीवाजीराव को अपना आदर्श मानते थे, लेकिन उनके बीच का रिश्ता घनिष्ठता से कहीं अधिक औपचारिक था। नर्स कैस्टेलिनो याद करती हैं, 'पिताजी महाराज की तरह बहुत ही औपचारिक थे।'

हर सुबह, सिंधिया परिवार के सभी बच्चों को ऊपर जाकर अपने माता-पिता के पैर छूने पड़ते थे। संबोधन में मर्यादा और औपचारिकता का पालन किया जाता था। हालांकि माधवराव अपनी दोनों बड़ी बहनों के बहुत करीब थे, फिर भी वे हमेशा उन्हें औपचारिक रूप से संबोधित करते थे: अक्का राजे और उषा राजे। उनकी सबसे छोटी बहन यशोदरा राजे खुद और अपनी बड़ी बहन वसुंधरा राजे के बारे में कहती हैं, 'हम वसु और यशो थे, लेकिन बड़ों को सही ढंग से संबोधित करना जरूरी था।'

औपचारिकता के अलावा, निकटता की कमी भी थी। जीवाजीराव अक्सर घर पर नहीं रहते थे, क्योंकि उन्हें ग्वालियर, बॉम्बे, पुणे और दिल्ली के बीच अपना समय बांटना पड़ता था। 1947 में जीवाजीराव को मध्य भारत का राज प्रमुख नियुक्त किया गया था, लेकिन 1956 में मध्य प्रदेश के गठन के बाद यह पद समाप्त कर दिया गया, जिससे उन्हें ग्वालियर से बाहर यात्रा करने के लिए अधिक समय मिल गया।

उनके पिता ने बंबई के वर्ली समुद्री तट पर शानदार समुद्र महल का निर्माण कराया था और जीवाजीराव वहां अधिकाधिक समय बिताने लगे थे।

पूनम चैंबर्स से लेकर समुद्र महल कहलाने वाली ऊंची इमारत तक फैले 20 एकड़ भूमि पर निर्मित यह महल संभवतः बॉम्बे में अब तक निर्मित सबसे शानदार निजी

निवास है।
जीवाजीराव को बॉम्बे और समुद्र महल से बेहद प्यार था। उन्हें बॉम्बे का घुड़दौड़खाना भी बहुत पसंद था, जो समुद्र महल के ठीक सामने सड़क के पार ही स्थित था।
कई महाराजा घुड़दौड़ से मोहित थे, लेकिन जीवाजीराव की मोहितता उससे कहीं अधिक थी: उन्हें घोड़ों से बेहद लगाव था। उन्होंने कभी अपने घोड़ों पर दांव नहीं लगाया (भले ही वे जीतने के प्रबल दावेदार हों) और घुड़दौड़ से कभी कोई पैसा नहीं कमाया, बल्कि अपने घोड़ों की प्रगति पर जुनूनी नजर रखी।
जब उनका कोई घोड़ा जीतता था—और ऐसा अक्सर होता था—तो वे बेहद खुश हो जाते और अपने कर्मचारियों को इनाम बांटने लगते। पहली बार जब सिंधिया परिवार के घोड़े ने डर्बी जीती, तो जीवाजीराव को 75,000 रुपये का नकद पुरस्कार मिला—जो उन दिनों में बहुत बड़ी रकम थी। लेकिन उनकी खुशी इतनी अधिक थी कि उस दिन उन्होंने जो इनाम और टिप्स बांटे, वे नकद पुरस्कार से भी कहीं अधिक थे।
कई अन्य घोड़े मालिकों की तरह, महाराजा भी अंधविश्वासी थे। उनके ड्रेसिंग बॉय को यह सख्त हिदायत दी गई थी कि वह नोट करे कि महाराजा ने किस दिन कौन सा सूट, कमीज और टाई पहनी थी - अगर वह दिन उनके लिए 'शुभ' साबित होता (यानी, अगर उनका घोड़ा जीत जाता), तो वह 'भाग्यशाली' कपड़े दोबारा पहनता।
भाग्य को लेकर यह जुनून लोगों में भी झलकता था। महाराजा के कर्मचारी उनसे घुड़दौड़ के लिए रवाना होने से ठीक पहले मिलने से बचते थे। उन्हें डर रहता था कि अगर उस दिन उनके घोड़े अच्छा प्रदर्शन नहीं कर पाए तो उन्हें 'बदकिस्मत' कह दिया जाएगा। सौभाग्य से, महाराजा के घोड़े आमतौर पर जीत जाते थे।
बंबई में घुड़दौड़ का मौसम नवंबर में शुरू होता था और मार्च तक चलता था। लेकिन साल के दो महीने (अगस्त और सितंबर) पुणे में घुड़दौड़ होती थी। और जीवाजीराव और उनका स्टाफ वहीं चले जाते थे।
सिंधिया परिवार का पुणे में एक महल था, जिसे एक प्रसिद्ध इतालवी वास्तुकार द्वारा स्पेनिश विला शैली में बनाया गया था। इसे पद्मा विलास कहा जाता था और यह भूमिगत सुरंगों और गुप्त दरवाजों से भरा हुआ था, जो सिंधिया बच्चों के लिए लुका-छिपी और पुलिस-चोर का खेल खेलने के लिए आदर्श स्थान था।

1949 में, जीवाजीराव ने पुणे से 10 किलोमीटर दूर स्थित 220 एकड़ का एक फार्म सर सुल्तान चिनॉय से खरीदा। चिनॉय द्वारा इसे रॉयल स्टड फार्म कहा जाता था, लेकिन सिंधिया परिवार ने इसका नाम बदलकर मंजरी रख दिया और वहां घोड़ों का प्रजनन शुरू किया।
जीवाजीराव ने इससे पहले ग्वालियर में घोड़ों का प्रजनन करने की कोशिश की थी, लेकिन उन्हें पता चला कि वहां का मौसम रेसिंग घोड़ों के प्रजनन के लिए अनुकूल नहीं था। लेकिन मंजरी में परिणाम काफी बेहतर रहे और जीवाजीराव भारतीय घुड़दौड़ में हाइपेरियन या अंग्रेजी नस्ल के घोड़ों को लाने वाले पहले प्रजनक बने।

~

जब जीवाजीराव बंबई में थे, तो उन्होंने अपना अधिकांश समय जौहरी नानूभाई झावेरी के साथ बिताया, जो उनके सबसे करीबी दोस्तों में से एक थे।
जीवाजीराव की सगाई के कुछ समय बाद ही दोनों की मुलाकात हुई थी। उस समय नई महारानी के लिए आभूषण बनवाने का काम बहुत प्रतिष्ठित था और भारत के लगभग हर जौहरी ने सिंधिया परिवार से मंजूरी के लिए अपने डिजाइन प्रस्तुत किए थे। नानूभाई आभूषण व्यवसाय में शीर्ष स्तर के नहीं थे। उनके साझेदारों द्वारा उन्हें व्यवसाय से बाहर कर दिए जाने के बाद वे बुरे दौर से गुजर रहे थे। हालांकि वे इस बात को अच्छी तरह समझते थे कि सिंधिया परिवार से काम मिलने की उनकी कोई संभावना नहीं है, फिर भी उन्होंने कुछ डिजाइन प्रस्तुत किए।
बाकी सभी आभूषण व्यापारियों के आश्चर्य के बीच, नानूभाई को कमीशन मिल गया। फर्क उनके डिजाइनों से नहीं, बल्कि उनके व्यक्तित्व से पड़ा। जीवाजीराव उनसे तुरंत प्रभावित हो गए और उनके बीच ऐसी दोस्ती हो गई जो जीवन भर कायम रही। महाराजा सिंधिया के आदेश पर नानूभाई ने नानूभाई ज्वैलर्स नाम से एक नया आभूषण व्यवसाय शुरू किया और फिर कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा।
उन्हें वह सौभाग्यशाली अवसर हमेशा याद रहा और 1965 में अपनी मृत्यु तक, नानूभाई ने जीवाजीराव का एक विजिटिंग कार्ड अपने ड्रेसिंग टेबल पर रखा। हर सुबह, काम पर जाने से पहले, वे अपना माथा उस कार्ड से छूते थे। उनकी बेटी, नीरजा नानूभाई कमानी कहती हैं, 'वे उस हृदय को कभी नहीं भूले जिससे जीवाजीराव ने उन पर इतना भरोसा और विश्वास जताया था।' आज भी, उनकी मृत्यु के कई वर्षों बाद, प्रसिद्ध कलाकार के. के. हेब्बर द्वारा बनाया गया और नानूभाई द्वारा

ही बनवाया गया जीवाजीराव सिंधिया का एक बड़ा चित्र, बॉम्बे स्थित उनकी बेटी के घर के ड्राइंग रूम में शोभा से सजा है।
जीवाजीराव ने ही नानूभाई का विवाह सुंदर कमला पिट्टी से करवाया था। श्रीमती पिट्टी अपने वैवाहिक जीवन से नाखुश थीं और जीवाजीराव, जो उन्हें बहन की तरह मानते थे (शायद इसलिए कि उनका नाम भी उनकी अपनी बहन की तरह कमला था), ने उनके लिए एक नया पति ढूंढने का बीड़ा उठाया। हालांकि नानूभाई की मां ने शुरू में इस रिश्ते का विरोध किया, लेकिन जीवाजीराव के आग्रह पर विवाह संपन्न हुआ। और जब तक नानूभाई जीवित रहे, कमला उनकी कलाई पर राखी बांधती रहीं। वह विजयराजे को 'भाभी' कहकर पुकारती थीं, और जब नानूभाई लंदन में मृत्यु के करीब थे, तो माधवराव उनसे मिलने गए और नीरजा से पूछा कि क्या वे उनकी किसी तरह से मदद कर सकते हैं।

~

आज के इस दौर में जब लोग एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप तक हवाई यात्रा करने में कोई बुराई नहीं समझते, तो जीवाजीराव की यात्राएँ शायद असामान्य न लगें। लेकिन उस युग के मानकों के अनुसार, बंबई और पुणे की उनकी नियमित यात्राएँ एक बड़ी उपलब्धि मानी जाती थीं।
जीवाजीराव ग्वालियर के महाराजा थे और उस दौर में महाराजा का पद बहुत मायने रखता था, इसलिए वे अकेले या कुछ सहायकों के साथ भी यात्रा नहीं कर सकते थे। सिंधिया दरबार का एक हिस्सा उनके साथ यात्रा करता था।
उदाहरण के लिए, जब जीवाजीराव घुड़दौड़ के मौसम के लिए बंबई आते थे, तो वे ग्वालियर से अपने राजकीय विमान से उड़ान भरते थे। लेकिन उनके साथ बड़ी संख्या में कर्मचारी सड़क और रेल मार्ग से बंबई भेजे जाते थे। उनके निजी सहायक उनके साथ यात्रा करते थे, लेकिन वरिष्ठ अधिकारी अलग से आते थे।
ग्वालियर से कम से कम पचास गाड़ियाँ भेजी जाती थीं जिनमें चार महीने के लिए पर्याप्त राशन होता था। टाइपिस्ट, क्लर्क, रसोइया, वेटर, चिकित्सक, कंपाउंडर, ड्रेसिंग बॉय, ड्राइवर और यहाँ तक कि महाराजा के कुत्तों की देखभाल के लिए डॉग-बॉय भी तैनात किए गए थे। ये सभी लोग समुद्र महल में सेवा करते थे, जहाँ वैसे भी बॉम्बे में स्थायी कर्मचारी मौजूद थे।

चूंकि बॉम्बे जीवाजीराव के जीवन का एक बड़ा हिस्सा बन गया था, इसलिए बच्चे अपनी छुट्टियां वहां अधिक से अधिक समय बिताने लगे और जीवाजीराव के बॉम्बे के दोस्तों के करीब आ गए, जिन्होंने बदले में सिंधिया बच्चों के लिए कुछ न कुछ करने का जिम्मा उठाया।

नानूभाई ने माधवराव और उनकी बहन उषा राजे का परिचय गैब्रिएला फ्रेडियानी से कराया। गैब्रिएला और उनकी बहन पेट्रीसिया हाल ही में बॉम्बे आई थीं, जब उनके पिता का उनकी कंपनी, लॉरो लाइन्स नामक शिपिंग लाइन द्वारा भारत में तबादला किया गया था। वे सिंधिया परिवार के साथ अच्छे दोस्त बन गए और अक्सर साथ में घुड़सवारी करने जाते थे।

गैब्रिएला को याद है कि किशोर माधवराव एक जीवंत और सक्रिय लड़का था जिसे तैराकी और घुड़सवारी जैसे बाहरी खेल बहुत पसंद थे। वह उसके साथ समुद्र महल में लंबी दोपहरें बिताती थी और उस दौर के लोकप्रिय गाने सुनती थी, जैसे कि 'इफ आई हैड अ हैमर'।

उसे याद है कि वह शरारतों से भरा हुआ था और हमेशा अपने दोस्तों को चिढ़ाने के लिए तैयार रहता था—खासकर अगर वे आकर्षक युवतियां हों।

एक दिन अचानक ही उसने किशोरी गैब्रिएला से पूछा कि दादी के लिए इतालवी शब्द क्या है।

'नॉनना,' उसने जवाब दिया।

और उस दिन से, चाहे वह कितना भी विरोध करे, वह हमेशा उसे इसी नाम से पुकारता था।

~

लेकिन, हालांकि यह बात व्यापक रूप से ज्ञात नहीं थी, जीवाजीराव का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा था। जिस मधुमेह ने उनके पिता की जान ली थी, वही उन्हें भी सताने लगा था। वे अब बैठकर रेस के लिए पुणे तक गाड़ी चलाने में असमर्थ थे और उन्हें अपनी डॉज कार की पिछली सीट को बिस्तर में बदलवाना पड़ा ताकि वे पूरी यात्रा के दौरान लेट सकें। नर्स कैस्टेलिनो नर्सरी से बीमार महाराजा की देखभाल करने के लिए आ गईं।

खराब स्वास्थ्य के बावजूद, जीवाजीराव ने वसीयत लिखने से साफ इनकार कर दिया। जब उनके कानूनी सलाहकार, कांगा एंड कंपनी के काका त्रिकोमदास द्वारकादास ने

हिचकिचाते हुए यह सुझाव दिया, तो महाराजा भड़क उठे: 'क्या उन्हें लगता है कि मैं इतनी जल्दी मर जाऊंगा?' उन्होंने शिकायत की। 'मुझे परवाह नहीं कि मेरी मृत्यु के बाद सरकार या कोई और मेरी संपत्ति ले ले। मैं वसीयत नहीं लिखूंगा।'

1960 में पद्मा राजे अठारह वर्ष की हुईं और जीवाजीराव अपनी प्रिय पुत्री के लिए एक उपयुक्त वर की तलाश करने लगे। संयोगवश, त्रिपुरा के राजपरिवार से एक प्रस्ताव आया। जीवाजीराव इस रिश्ते को लेकर उत्साहित नहीं थे। उनका मानना था कि त्रिपुरा के साथ किसी भी प्रकार का संबंध उचित नहीं होगा, क्योंकि उन्होंने स्वयं कमल प्रभा देवी से अपनी सगाई तोड़ दी थी और उनकी पत्नी की शादी कई साल पहले महाराजा के छोटे भाई दुर्जय किशोर देव से होने वाली थी। लेकिन विजयराज ने उनसे कहा कि पुरानी बातों को भूल जाओ। यह रिश्ता अच्छा साबित हुआ। पद्मा राजे त्रिपुरा की महारानी बनने वाली थीं।

और इस तरह, 6 मार्च 1960 को पद्मा राजे ने समुद्र महल में त्रिपुरा के किरित विक्रम बहादुर से विवाह किया। जैसा कि उम्मीद थी, यह एक भव्य विवाह समारोह था। बारात और अन्य मेहमानों के लिए मुंबई के सभी होटल के कमरे बुक कर लिए गए थे; 10,000 निमंत्रण पत्र भेजे गए थे; त्रिपुरा से बारात विशेष ट्रेन से पहुंची और दूल्हा-दुल्हन को वापस कोलकाता ले जाने के लिए एक और विशेष ट्रेन बुक की गई थी। कई हफ्तों तक, मुंबई में इस परीकथा जैसे विवाह की ही चर्चा छाई रही।

लेकिन इस परी कथा का सुखद अंत नहीं हुआ। जीवाजीराव की आशंकाएँ सही साबित हुईं; यह रिश्ता दुर्भाग्यपूर्ण था। चार साल और दो बेटियों के बाद, पद्मा राजे नींद की गोलियों के अधिक सेवन से मृत पाई गईं। विजयराज ने अपनी आत्मकथा में लिखा है: 'उनका विवाह असफल रहा था और मैं जानती थी कि वह बहुत दुखी थीं। उन्हें यह समझाने के मेरे प्रयास कि एक अच्छी हिंदू पत्नी का कर्तव्य है कि वह समझदार और आज्ञाकारी हो और विवाह को सफल बनाए, केवल उनके मुझसे अलगाव में परिणत हुए।'

केवल एक ही सांत्वना थी: जिस पिता ने उसे इतना प्यार किया था, वह इस त्रासदी को देखने के लिए अब जीवित नहीं था।

अपनी पुत्री के विवाह की थकान के कारण जीवाजीराव का स्वास्थ्य और भी बिगड़ गया था। जब उन्हें पता चला कि उनकी माता गजरा राजे की छतरी और प्रतिमा तैयार हैं, तो जीवाजीराव ने घोषणा की कि वे स्वयं ही यह समारोह संपन्न करेंगे। लेकिन

अनावरण के दिन एक छोटी सी दुर्घटना हो गई। छतरी का एक हिस्सा गिर गया, जिससे छोटी सी आग लग गई। जीवाजीराव स्तब्ध रह गए और उन्होंने इसे अपशगुन मान लिया। अचानक उन्हें याद आया कि उनके पिता माधव महाराज का निधन पैंतालीस वर्ष की आयु में हुआ था और अब वे स्वयं चौवालीस वर्ष के थे।

इस समय तक जीवाजीराव की एक आंख लगभग पूरी तरह से अंधी हो चुकी थी। जब वे अगली बार बंबई गए, तो दो चिकित्सक, डॉ. जल पटेल और डॉ. जे. एम. राणे, उनसे प्रतिदिन मिलने लगे। एक अन्य चिकित्सक, डॉ. विलियम मान, को लंदन से बुलाया गया, लेकिन उन्होंने कहा कि वे ज्यादा कुछ नहीं कर सकते।

जब डॉक्टरों ने लगभग उम्मीद छोड़ दी, तो ग्वालियर दरबार ने ज्योतिषियों और पंडितों का सहारा लिया। प्रार्थनाएं और पाठ हुए और ज्योतिषियों ने उत्साहवर्धक भविष्यवाणियां कीं।

9 जुलाई 1961 को जीवाजीराव 45 वर्ष के हो गए, ठीक उसी उम्र में माधव महाराज का निधन हुआ था। इसके बाद से उनकी हालत बिगड़ती चली गई। एक सप्ताह के भीतर ही वे कोमा में चले गए। 16 जुलाई की रात को, जब उनकी पत्नी उनके कान में 'कृष्ण, कृष्ण' का जाप कर रही थीं और उनके बेटे का हाथ उनके माथे पर था, जीवाजीराव ने मृत्यु से अंतिम संघर्ष किया। रात 11:40 बजे, डॉ. मान ने उनकी नब्ज़ जाँचने के लिए आगे कदम बढ़ाया। नब्ज़ नहीं चल रही थी।

जीवाजीराव का पार्थिव शरीर राजकीय विमान से ग्वालियर लाया गया। उनकी विधवा, पुत्र और पुत्रियाँ पार्थिव शरीर के साथ यात्रा कर रहे थे। उनके साथ एक दरबारी भी था जिसने बाद में सिंधिया वृत्तांत में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई: सरदार संभाजीराव आंग्रे।

अपने पिता की चिता को अग्नि देते हुए माधवराव सिंधिया ने चुपचाप इस बात को स्वीकार कर लिया कि उनका जीवन हमेशा के लिए बदल गया था। सोलह वर्ष की आयु में वे ग्वालियर के नए महाराजा बन चुके थे। उनके पूर्वजों की विशाल विरासत अचानक उनके कंधों पर आ गई थी। वे अभी भी विद्यालय में पढ़ रहे थे, लेकिन अब वे गृहस्थी के मुखिया, जय विलास और समुद्र महल के नए स्वामी थे। उन्हें अपनी तीन बहनों का विवाह कराना था और ग्वालियर की जनता की अपेक्षाओं को पूरा करना था।

माधवराव सिंधिया ग्वालियर के सिंधिया राजवंश से संबंध रखते थे। स्वतंत्र भारत में वंशानुगत राजशाही समाप्त होने के बाद, उन्होंने एक राजनीतिज्ञ के रूप में अपना करियर बनाया। 2001 में एक विमान दुर्घटना में उनकी कम

उम्र में मृत्यु हो गई। यह अंश माधवराव सिंधिया: एक जीवन नामक पुस्तक से लिया गया है।

आभार

इस खंड में कॉपीराइट सामग्री को पुनः प्रकाशित करने की अनुमति देने के लिए इन कॉपीराइट धारकों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त किया जाता है:
'साम्राज्य का उदय: मौर्यकालीन भारत', रोमिला थापर द्वारा लिखित 'द पेंगुइन हिस्ट्री ऑफ अर्ली इंडिया: फ्रॉम द ओरिजिन टू ई. 1300' से उद्धृत अंश, पेंगुइन बुक्स इंडिया द्वारा प्रकाशित, 2002, कॉपीराइट © रोमिला थापर, 2002, प्रकाशक की अनुमति से पुनर्मुद्रित।
'प्रथम हिंदू साम्राज्य', अब्राहम एराली द्वारा लिखित पुस्तक 'द फर्स्ट स्प्रिंग: लाइफ इन द गोल्डन एज ऑफ इंडिया' से उद्धृत अंश, पेंगुइन बुक्स इंडिया द्वारा प्रकाशित, 2011, कॉपीराइट © अब्राहम एराली, 2011, प्रकाशक की अनुमति से पुनर्मुद्रित।
'राजा राजा चोझार', कल्कि द्वारा रचित 'प्रथम बाढ़' से उद्धृत अंश, सी. वी. कार्तिक नारायणन द्वारा अनुवादित, साउथ एशिया बुक्स द्वारा प्रकाशित, 1999, कॉपीराइट © सी. वी. कार्तिक नारायण की संपत्ति, 1999, अनुवादक की संपत्ति की अनुमति से पुनर्मुद्रित।
'कृष्णदेव राय' मनु एस. पिल्लई द्वारा विशेष रूप से इस खंड के लिए लिखी गई एक मौलिक रचना है, कॉपीराइट © मनु एस. पिल्लई, 2019।
'द शेल्टर ऑफ द वर्ल्ड', सलमान रुश्दी द्वारा लिखित 'द एनचैंट्रेस ऑफ फ्लोरेंस' से संपादित अंश, कॉपीराइट © 2008, सलमान रुश्दी, द वाइली एजेंसी (यूके) लिमिटेड की अनुमति से उपयोग किया गया।
'टीपू सुल्तान', राजमोहन गांधी द्वारा लिखित 'मॉडर्न साउथ इंडिया: ए हिस्ट्री फ्रॉम द 17वीं सेंचुरी टू द प्रेजेंट' से संपादित अंश, एलेफ बुक कंपनी द्वारा 2018 में प्रकाशित, कॉपीराइट © राजमोहन गांधी, 2018, लेखक की अनुमति से पुनर्मुद्रित।
'द लास्ट मुगल', विलियम डेलरिम्पल द्वारा लिखित पुस्तक 'द लास्ट मुगल: द फॉल ऑफ ए डायनेस्टी, दिल्ली, 1857' का अंश, पेंगुइन बुक्स इंडिया द्वारा प्रकाशित, 2006, कॉपीराइट © विलियम डेलरिम्पल, 2006, लेखक की अनुमति से पुनर्मुद्रित।
'रणजीत सिंह, पंजाब के महाराजा', खुशवंत सिंह द्वारा लिखित पुस्तक 'रणजीत सिंह: पंजाब के महाराजा' से उद्धृत अंश, प्रथम प्रकाशन जॉर्ज एलन अनविन लिमिटेड

द्वारा 1962 में प्रकाशित, कॉपीराइट © माला दयाल, माला दयाल की अनुमति से पुनर्मुद्रित।
'माधवराव सिंधिया', वीर संघवी और नमिता भंडारे द्वारा लिखित 'माधवराव सिंधिया: ए लाइफ' पुस्तक से उद्धृत अंश, पेंगुइन बुक्स इंडिया द्वारा प्रकाशित, 2009, कॉपीराइट © वीर संघवी और नमिता भंडारे, 2009, लेखकों की अनुमति से पुनर्मुद्रित।

योगदानकर्ताओं पर टिप्पणियाँ

नमिता भंडारे (जन्म 1963) दिल्ली स्थित पत्रकार और स्तंभकार हैं, जो लैंगिक समानता और अन्य सामाजिक मुद्दों पर लिखती हैं। उन्होंने स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय से पत्रकारिता की पढ़ाई की और फिर भारत लौटकर कई समाचार पत्रों के लिए काम किया। 1991 में उन्होंने संडे पत्रिका में काम करना शुरू किया, जहाँ वे फीचर एडिटर के पद तक पहुँचीं। इंडिया टुडे में कुछ समय काम करने के बाद, उन्होंने हिंदुस्तान टाइम्स में काम करना शुरू किया, जहाँ उन्होंने अखबार के नए शनिवार संस्करण का शुभारंभ और संपादन किया। उन्होंने हिंदुस्तान टाइम्स लीडरशिप सीरीज़ के तहत कई पुस्तकों का संपादन किया है। वे वीर संघवी के साथ सह-लिखित पुस्तक 'माधवराव सिंधिया: ए लाइफ' की लेखिका भी हैं।
विलियम डेलरिम्पल (जन्म 1965) कई बेस्टसेलिंग पुस्तकों के लेखक हैं, जिनमें हाल ही में प्रकाशित पुस्तक "द एनार्की: द ईस्ट इंडिया कंपनी, कॉर्पोरेट वायलेंस, एंड द पिलिज ऑफ एन एंपायर" शामिल है। उन्हें संडे टाइम्स यंग ब्रिटिश राइटर ऑफ द ईयर अवार्ड, वुल्फसन प्राइज फॉर हिस्ट्री, स्कॉटिश बुक ऑफ द ईयर अवार्ड से सम्मानित किया गया है और सैमुअल जॉनसन प्राइज के लिए तीन बार उनकी सूची में नाम शामिल किया गया है। डेलरिम्पल ज़ी जयपुर लिटरेचर फेस्टिवल के संस्थापकों में से एक और सह-निदेशक हैं।
अब्राहम एराली (1934-2015) ने पूर्व-आधुनिक भारतीय इतिहास पर चार प्रशंसित पुस्तकें लिखीं—द लास्ट स्प्रिंग: द लाइव्स एंड टाइम्स ऑफ द ग्रेट मुगल्स, जेम इन द लोटस: द सीडिंग ऑफ इंडियन सिविलाइजेशन, द फर्स्ट स्प्रिंग: द गोल्डन एज ऑफ इंडिया और द एज ऑफ रैथ: ए हिस्ट्री ऑफ द दिल्ली सल्तनत। उन्होंने भारत और

संयुक्त राज्य अमेरिका के कॉलेजों में भारतीय इतिहास पढ़ाया और भारत की पहली शहरी पत्रिका 'असाइड' के संपादक थे।

राजमोहन गांधी (जन्म 1935) की अंतिम चार पुस्तकें हैं: आधुनिक दक्षिण भारत: 17वीं शताब्दी से वर्तमान तक का इतिहास, गांधी जी का महत्व क्यों: महात्मा गांधी की विरासत का मूल्यांकन, संस्थापक पिताओं को समझना: भारतीय गणराज्य की शुरुआत की पड़ताल और पंजाब: औरंगजेब से माउंटबेटन तक का इतिहास। उन्होंने भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, गांधीनगर, आईआईटी-बॉम्बे, मिशिगन स्टेट यूनिवर्सिटी और इलिनोइस विश्वविद्यालय में राजनीति विज्ञान और इतिहास पढ़ाया है, जहां वे वर्तमान में शोध प्रोफेसर के रूप में कार्यरत हैं।

रामास्वामी अय्यर कृष्णमूर्ति का उपनाम कल्कि (1899-1954) था। वे एक तमिल लेखक, पत्रकार, कवि, आलोचक और भारतीय स्वतंत्रता सेनानी थे। उनकी रचनाओं में 120 से अधिक लघु कथाएँ, दस उपन्यासिकाएँ, पाँच उपन्यास, तीन ऐतिहासिक प्रेम कहानियाँ, संपादकीय और राजनीतिक लेख तथा सैकड़ों फिल्म और संगीत समीक्षाएँ शामिल हैं। उन्हें मुख्य रूप से चोल वंश पर आधारित तमिल महाकाव्य 'पोन्नियिन सेल्वन' के लेखक के रूप में जाना जाता है।

सी. वी. कार्तिक नारायणन (1938-2017) एक उद्योगपति थे और उन्होंने ऑटोमोबाइल पुर्जों के निर्माण से जुड़ी कंपनियों का नेतृत्व किया। वे यूसीएएल प्रोडक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड और यूसीएएल ऑटो प्राइवेट लिमिटेड के अध्यक्ष, यूसीएएल ट्रेवल्स प्राइवेट लिमिटेड में निदेशक और सुंदरम फास्टनर्स लिमिटेड (एसएफएल) में स्वतंत्र निदेशक थे। उन्होंने स्टैंडर्ड मोटर प्रोडक्ट्स ऑफ इंडिया लिमिटेड की स्थापना में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और 1980 में सोसाइटी ऑफ इंडियन ऑटोमोबाइल मैन्युफैक्चरर्स के अध्यक्ष रहे। उन्होंने कॉन्फेडरेशन ऑफ इंडियन इंडस्ट्री (सीआईआई) में भी अहम योगदान दिया। दक्षिण भारतीय इतिहास, कला और संस्कृति में गहरी रुचि रखने वाले नारायणन ने कल्कि के महाकाव्य 'पोन्नियिन सेल्वन' का अंग्रेजी अनुवाद किया था। वे एक कुशल मृदंगम वादक भी थे।

मनु एस. पिल्लई (जन्म 1990) पुरस्कार विजेता पुस्तकों 'द आइवरी थ्रोन: क्रॉनिकल्स ऑफ द हाउस ऑफ त्रावणकोर', 'रेबेल सुल्तांस: द डेक्कन फ्रॉम खिलजी टू शिवाजी' और 'द कोर्टेसन, द महात्मा एंड द इटैलियन ब्राह्मण: टेल्स फ्रॉम इंडियन हिस्ट्री' के लेखक हैं। पूर्व में सांसद डॉ. शशि थरूर के चीफ ऑफ स्टाफ रह चुके मनु

ने ब्रिटेन के हाउस ऑफ लॉर्ड्स में लॉर्ड करण बिलिमोरिया सीबीई, डीएल के साथ और बीबीसी के 'इनकार्नेशन्स' इतिहास श्रृंखला में भी काम किया है। मनु की पहली पुस्तक, 'द आइवरी थ्रोन', ने 2016 का टाटा पुरस्कार सर्वश्रेष्ठ प्रथम गैर-कथा कृति के लिए और 2017 का साहित्य अकादमी युवा पुरस्कार जीता। मनु ने सेरेना चोपड़ा की पुस्तक 'भूटान इकोज़' में भी योगदान दिया है और 'मिंट लाउंज' के लिए साप्ताहिक कॉलम लिखते हैं। उनके अन्य लेख 'द हिंदू', 'ओपन मैगज़ीन', 'टाइम्स ऑफ इंडिया', 'हिंदुस्तान टाइम्स' और अन्य प्रकाशनों में प्रकाशित हुए हैं।

सलमान रुश्दी (जन्म 1947) चौदह उपन्यासों के लेखक हैं—क्विचॉट, ग्रिमस, मिडनाइट्स चिल्ड्रन (जिसे 1981 में बुकर पुरस्कार से सम्मानित किया गया और बुकर पुरस्कार की सर्वश्रेष्ठ कृति भी घोषित किया गया), शेम, द सैटैनिक वर्सेज, हारून एंड द सी ऑफ स्टोरीज, द मूर्स लास्ट साइ, द ग्राउंड बिनीथ हर फीट, फ्यूरी, शालिमार द क्लाउन, द एनचैंट्रेस ऑफ फ्लोरेंस, लूका एंड द फायर ऑफ लाइफ, टू इयर्स एट मंथ्स एंड ट्वेंटी-एट नाइट्स और द गोल्डन हाउस। रुश्दी कहानियों की एक पुस्तक, ईस्ट, वेस्ट, और चार गैर-काल्पनिक कृतियों—जोसेफ एंटोन—ए मेमोइर, इमेजिनरी होमलैंड्स, द जगुआर स्माइल और स्टेप अक्रॉस दिस लाइन—के भी लेखक हैं। वे समकालीन भारतीय लेखन के संकलन 'मिररवर्क' और 2008 के 'बेस्ट अमेरिकन शॉर्ट स्टोरीज' संकलन के सह-संपादक हैं। उनकी पुस्तकें चालीस से अधिक भाषाओं में अनुवादित हो चुकी हैं।

ब्रिटिश रॉयल सोसाइटी ऑफ लिटरेचर के फेलो और अमेरिकन एकेडमी ऑफ आर्ट्स एंड लेटर्स के सदस्य, रशदी को कई अन्य सम्मानों के साथ-साथ सर्वश्रेष्ठ उपन्यास के लिए व्हिटब्रेड पुरस्कार (दो बार), राइटर्स गिल्ड पुरस्कार, जेम्स टैट ब्लैक पुरस्कार, यूरोपीय संघ का अरिस्टियन साहित्य पुरस्कार, ब्रिटेन और जर्मनी दोनों में वर्ष के सर्वश्रेष्ठ लेखक का पुरस्कार, फ्रांस का प्रिक्स डू मेइलूर लिव्रे एट्रांगर, बुडापेस्ट ग्रैंड प्राइज फॉर लिटरेचर, इटली का प्रेमियो ग्रिंज़ेन कैवूर, भारत का क्रॉसवर्ड बुक पुरस्कार, ऑस्ट्रिया का यूरोपीय साहित्य राज्य पुरस्कार, लंदन इंटरनेशनल राइटर्स अवार्ड, यूनिवर्सिटी कॉलेज डबलिन का जेम्स जॉयस पुरस्कार, सेंट लुइस लिटरेरी प्राइज, शिकागो पब्लिक लाइब्रेरी का कार्ल सैंडबर्ग पुरस्कार और एक अमेरिकी राष्ट्रीय कला पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। उन्हें छह यूरोपीय और छह अमेरिकी विश्वविद्यालयों से मानद डॉक्टरेट और फेलोशिप प्राप्त हैं, वे एमआईटी में

मानविकी के मानद प्रोफेसर और एमोरी विश्वविद्यालय में विशिष्ट प्रोफेसर हैं। पेन अमेरिकन सेंटर के पूर्व अध्यक्ष, रशदी को 2007 में नाइटहुड की उपाधि से सम्मानित किया गया था और वे ऑर्ड्रे डेस आर्ट्स एट डेस लेट्रेस में कमांडर के पद पर आसीन हैं। वर्तमान में, रशदी न्यूयॉर्क विश्वविद्यालय में एक विशिष्ट लेखक के रूप में कार्यरत हैं।

वीर संघवी (जन्म 1956) अपनी पीढ़ी के सबसे प्रसिद्ध भारतीय पत्रकारों में से एक हैं। वे बाईस वर्ष की आयु में बॉम्बे पत्रिका के संपादक बने, जिससे वे भारतीय पत्रकारिता के इतिहास में सबसे कम उम्र के संपादक बन गए। इसके बाद उन्होंने इम्प्रिंट और संडे का संपादन किया, जो उस समय भारत की सबसे अधिक बिकने वाली साप्ताहिक समाचार पत्रिका थी। 1999 से 2004 तक वे हिंदुस्तान टाइम्स के संपादक रहे, जिसके बाद उन्हें संपादकीय निदेशक के पद पर पदोन्नत किया गया, जिस पद पर वे 2007 तक रहे, जिसके बाद उन्होंने अखबार में स्तंभकार के रूप में काम करना जारी रखा। उनके टेलीविजन करियर में स्टार टीवी नेटवर्क, एनडीटीवी, डिस्कवरी और अन्य चैनलों पर कई पुरस्कार विजेता कार्यक्रम शामिल हैं। सीएनएन-न्यूज़18 पर उनका साप्ताहिक राजनीतिक कार्यक्रम 'वर्चुओसिटी' चैनल के सबसे लोकप्रिय कार्यक्रमों में से एक है। वे भारत के अग्रणी खाद्य और यात्रा लेखक भी हैं। उनकी पुस्तकों में बेस्टसेलर 'मैंडेट: विल ऑफ द पीपल', 'मेन ऑफ स्टील', 'रूड फूड' (जिसने दुनिया की सर्वश्रेष्ठ खाद्य साहित्य पुस्तक के लिए कॉइनट्रो पुरस्कार जीता), 'माधवराव सिंधिया: ए लाइफ' (नमिता भंडारे के साथ सह-लिखित), 'द गेमचेंजर्स: ट्रांसफॉर्मिंग इंडिया' और 'द इंडियन पैंट्री: द वेरी बेस्ट ऑफ रूड फूड' शामिल हैं।

जादुनाथ सरकार (1870-1958) मुगल वंश के एक प्रख्यात इतिहासकार थे। उन्होंने पटना महाविद्यालय में अंग्रेजी पढ़ाया और बाद में इतिहास के शिक्षक बन गए। सरकार ने औरंगजेब को अपने जीवन का विषय बनाया। उनकी पहली पुस्तक, 'इंडिया ऑफ औरंगजेब', 1901 में प्रकाशित हुई। उनकी पांच खंडों वाली पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब' को पूरा करने में पच्चीस वर्ष लगे और यह 1924 में प्रकाशित हुई। सरकार ने अपनी चार खंडों वाली पुस्तक 'फॉल ऑफ द मुगल एंपायर' को पूरा करने में और पच्चीस वर्ष लगाए, जो 1950 में बनकर तैयार हुई। वे 'चैतन्य: हिज पिलग्रिमेजेस एंड टीचिंग्स' और 'शिवाजी एंड हिज टाइम्स' के भी लेखक हैं। सरकार

ने कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति और बंगाल विधान परिषद के सदस्य के रूप में कार्य किया। उन्हें 1929 में नाइट की उपाधि से सम्मानित किया गया।
खुशवंत सिंह (1915-2014) योजना पत्रिका के संस्थापक-संपादक और इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इंडिया, नेशनल हेराल्ड और हिंदुस्तान टाइम्स के संपादक थे। उन्होंने कई बहुचर्चित और समीक्षकों द्वारा सराही गई पुस्तकें लिखीं, जिनमें उपन्यास 'ट्रेन टू पाकिस्तान', 'आई शैल नॉट हियर द नाइटिंगेल' और 'दिल्ली' शामिल हैं; उनकी आत्मकथा 'ट्रुथ, लव एंड ए लिटिल मैलिस'; और दो खंडों वाली 'ए हिस्ट्री ऑफ द सिख्स'। उन्होंने हिंदी, उर्दू और पंजाबी से अनुवाद भी किया।
रोमिला थापर (जन्म 1931) नई दिल्ली स्थित जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में इतिहास की एमेरिटस प्रोफेसर हैं। उन्हें भारतीय इतिहास कांग्रेस की अध्यक्ष चुना गया था और वे ब्रिटिश अकादमी की फेलो हैं। 2008 में, उन्हें अमेरिकी लाइब्रेरी ऑफ कांग्रेस का प्रतिष्ठित क्लुगे पुरस्कार प्रदान किया गया, जो इतिहास जैसे विषयों में आजीवन उपलब्धियों को सम्मानित करता है, जिन्हें नोबेल पुरस्कार के दायरे में नहीं रखा जाता है। वे कई बेस्टसेलर पुस्तकों की लेखिका हैं, जिनमें 'इंडियन कल्चर्स एज़ हेरिटेज: कंटेम्परेरी पास्ट्स' और 'द पास्ट एज़ प्रेज़ेंट: फॉरजिंग कंटेम्परेरी आइडेंटिटीज़ थ्रू हिस्ट्री' शामिल हैं। उन्होंने 'द पब्लिक इंटेलेक्चुअल इन इंडिया', 'ऑन नेशनलिज़्म' और 'व्हिच ऑफ अस आर आर्यन्स? रीथिंकिंग द कॉन्सेप्ट ऑफ आवर ओरिजिन' का सह-लेखन भी किया है।